# जैन भारती

मार्च 2013 • वर्ष 61 • अंक 3 • वार्षिक रु. 200.00

## रंगों की भाषा
## जीवन की परिभाषा

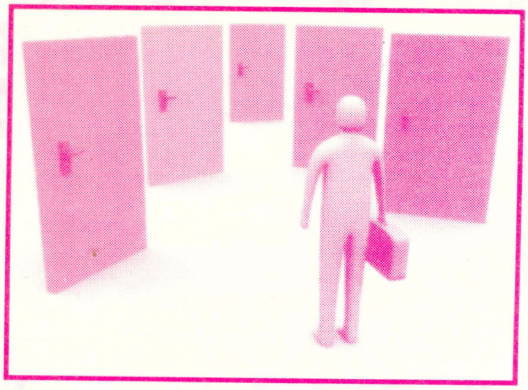

उठो, जागो और लक्ष्य तक मत रुको
—स्वामी विवेकानंद

**NIRMAL CHORDIA**
**RISHI CHORDIA**

Omega™
AN ISO 9001 COMPANY
★ HOT PRESSED
★ ECO-FRIENDLY
★ TERMITE RESISTANT
★ A QUALITY PRODUCT
THE QUALITY CONSISTENT PLYWOOD

AN ISO 9001 : 9000 CERTIFIED COMPANY
WOOD SHINE™
PLY & BOARD
Termite Resistant
Heat Resistant
Fungus Resistant
Life time Guarantee
Borer Free
A QUALITY PRODUCT

KUBER PLY
TERMITE RESISTANT
PRESERVATIVE TREATED
WATER PROOF
PHENOL BONDED (BWP GRADE)
100% BOILING WATER PROOF

PP
PLY PORT
*Wholesale & Retail*

**Dealers in :**
Plywoods, Timber and Allied Products

**REGD. OFF. :**
No. 59, Choolai High Road
Choolai, Chennai 600112
Phone : 044-25387087, 42825736
Cell : 9381008335

**SHOW ROOM**
No. 134/1, Choolai High Road
Chennai 600112
Phone : 044-26693241, 42825046
Cell : 9840035641


ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
Koba, Gandhinagar-382 009
Phone : (079) 23276252, 23276204-0

# जैन भारती

वर्ष 61 • मार्च 2013 • अंक 3

*सम्पादक*
**डॉ. शान्ता जैन**

## अनुक्रम


| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | सम्पादकीय | | 5 |
| 2. | रंगों से व्यक्तित्व की पहचान | –आचार्य तुलसी | 7 |
| 3. | उदय का महान सूत्र : सामायिक | –आचार्य महाप्रज्ञ | 9 |
| 4. | धृति धारण करो | –आचार्य महाश्रमण | 15 |
| 5. | अपने पांवों पर कुल्हाड़ी न चलाएं | –साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा | 19 |
| 6. | सार्थकता की तलाश | –साध्वी कनकश्री | 21 |
| 7. | जैन दर्शन में तनाव और तनाव से मुक्ति | –प्रोफेसर सागरमल जैन | 25 |
| 8. | आचार्य तुलसी की दृष्टि में विश्व शांति... | –प्रोफेसर बच्छराज दूगड़ | 28 |
| 9. | ढलती उम्र को आनन्द के साथ जीएं | –सुश्री वीणा जैन | 33 |
| 10. | संस्कार : परत-दर-परत | –रणजीत सिंह कूमट | 36 |
| 11. | शिखर छूने के रास्ते | –समणी मल्लीप्रज्ञा | 39 |
| 12. | भाव काव्य पथ | –डॉ. उम्मेद बैद | 42 |
| 13. | रंगों की भाषा : जीवन की परिभाषा | | 43 |
| 14. | यह है होली का सन्देश... | –तरुण सेठिया | 46 |
| 15. | रंगों के असली महत्त्व को समझें | –राजेन्द्र खटेड़ | 47 |
| 16. | अनेकान्त प्रिय आचार्यश्री भिक्षु | –मुनि मदनकुमार | 49 |
| 17. | नारी की सोच का दायरा कितना ऊंचा? | –वीणा बैद | 52 |
| 18. | तेरापंथ शासन का कार्यकारी हस्ताक्षर महासभा | | 54 |
| 19. | ऐसा होगा कलयुग.... | | 58 |


*आवरण*
गौरीशंकर

**संपादकीय सम्पर्क सूत्र :** डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्व भारती, लाडनूं, 341306
**प्रकाशकीय कार्यालय :** जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
**प्रधान कार्यालय :** जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
**सदस्यता शुल्क :** वार्षिक 200/- • त्रैवार्षिक 500/- • दसवर्षीय 1500/- रुपए

# शुद्ध साध्य के लिए साधन शुद्ध हो

आचार्य भिक्षु ने दो शताब्दी पूर्व कहा था–'शुद्ध साध्य का साधन अशुद्ध नहीं हो सकता और शुद्ध साधन का माध्यम अशुद्ध नहीं हो सकता। मोक्ष साध्य है और उसका साधन है संयम। वह संयम के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। जो व्यक्ति लड्डुओं के लिए तपस्या करते हैं, वे कभी भी धर्मी नहीं हैं और उद्देश्य से तपस्या करने वालों को जो लड्डू खिलाते हैं, वे धर्मी नहीं हैं।'

आचार्य भिक्षु ने कहा कि–'देव, गुरु और धर्म की उपासना धार्मिक का साध्य है। उपासना का साधन है अहिंसा। किन्तु जो व्यक्ति हिंसा के द्वारा उनकी उपासना करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि वह है जो धर्म के लिए हिंसा नहीं करता।

आचार्य भिक्षु के समय में भी साधन–शुद्धि के विचार को महत्त्व न देने वाली मान्यता थी। उसके अनुयायी कहते थे–'प्रयोजनवश धर्म के लिए हिंसा का अवलम्बन लिया जा सकता है। एक बार थोड़ी हिंसा होती है, किन्तु आगे उससे बहुत धर्म होता है।' आचार्य भिक्षु ने इसे मान्यता नहीं दी। उन्होंने कहा–'बाद में धर्म या पाप होगा, इससे वर्तमान अच्छा या बुरा नहीं बनता। कार्य की कसौटी वर्तमान ही है। कुछ जैन लोग दूसरों को लड्डू खिलाकर उनसे तपस्या कराते थे। उनका विश्वास था कि वे उपवास करेंगे, उसमें हमें धर्म होगा। आचार्य भिक्षु इस अभिमत के आलोचक थे। उनका सिद्धान्त था कि पीछे जो करेगा, उसका फल उसे होगा, किन्तु लड्डू खिलाने में धर्म नहीं है।

आगे धर्म करेगा, इसलिए वर्तमान में उसके लिए साध्य के प्रतिकूल साधन का प्रयोग किया जाए, यह युक्तिसंगत नहीं। दया उपादेय तत्त्व है। अहिंसा का पालन वही कर सकता है, जिसका मन दया से भीगा हुआ हो, पर साधन की विकृति से दया भी विकृत बन जाती है। एक आदमी मूली खा रहा था। दूसरे के मन में मूली के जीवों के प्रति दया उत्पन्न हुई। उसने बलप्रयोग किया और जो मूली खा रहा था उसके हाथ से वह छीन ली। दया का यह साधन शुद्ध नहीं है। हिंसक वही होता है जो हिंसा करे, जिसके मन में हिंसा का भाव हो और अहिंसक भी वही होता है जो अहिंसा का पालन करे, जिसके मन में अहिंसा का भाव हो। बलात् किसी को हिंसक या अहिंसक नहीं बनाया जा सकता। भोग धर्म नहीं है, यह जानकर यदि कोई बलात् किसी के भोगों का विच्छेद करता है, तो वह अधर्म करता है।

जिनके मन में दया का भाव उठा, उसके लिए दया का साधन है उपदेश और जिसके मन में दया का भाव उत्पन्न करना है उसके लिए दया का साधन है हृदय–परिवर्तन। आत्मवादी का साध्य है मोक्ष–आत्मा का पूर्ण विकास। उसके साधन हैं सम्यक्–दर्शन, सम्यक्–ज्ञान और असंयमी को संयमी बनाना साध्य के अनुकूल है।

# रंग मन को भी रंगता

भारतीय संस्कृति में होली-दीवाली जैसे त्योहार मनुष्य को जीने की नई शैली और नई सोच देते हैं। इतिहास के सुनहले संदर्भ जब निजी व्यवहार से जुड़ते हैं तो उनके सांस्कृतिक आदर्श, सिद्धांत, परम्परा, रीति रस्म, जीवन शैली स्वयं विकास की दिशा में पथदर्शक बन जाते हैं।

हमारे लोक व्यवहार में आज भी होली की आहट तन और मन को तरोताजगी से भर देती है। यूं लगता है, यह पवित्र पर्व संस्कारों की प्रेरणा है, भाईचारे का आदर्श है, संगठन और एकता का सुरक्षा कवच है, प्रेम, सौहार्द, सामंजस्य, समन्वय जैसे रिश्तों का रक्षा सूत्र है। यह पर्व केवल बाहर से ही नहीं रंगता, भीतर से भी रंगता है और कभी-कभी तो जिन्दगी के सारे मायने तक बदलकर रख देता है।

यह भी सच है कि रंगों से खेलना और होलिका का दहन कर देना मात्र ही इस पर्व का मकसद नहीं है। यह पर्व बुराइयों पर अच्छाइयों की जीत है। बिछुड़ते-बिखरते रिश्तों को जोड़ने का ईमानदार प्रयत्न है। मतभेद के साथ मनभेद मिटाने का अवसर है। यह संकल्प दिवस है कि हम हमारे बीच नासमझी से पनपती गलतफहमियों की दीवारें ढहायें, साथ बैठकर परस्पर संवाद का माहौल बनाएं, समस्याओं का समाधान खोजें। अपने अहं और आग्रह को झुकाएं। औरों को सहना सीखें। इस सोच को भी ढीला छोड़ें कि जो मैं सोचता, कहता और करता हूं सिर्फ वही सच है। दोस्ती को गहराई दें। कभी किसी से बदला लेने की भावना मन में न जगने दें, क्योंकि बदला लेने की अपेक्षा बदलना महत्त्वपूर्ण प्रयत्न है।

होली आध्यात्मिक पर्व भी है। जैनों में इस पर्व पर चातुर्मासिक प्रतिक्रमण की परम्परा है। अतीत में हुई भूलों के लिए व्यक्ति क्षमा मांगता है और भविष्य में उन्हें पुनः न दोहराने का संकल्प करता है। होली स्वयं द्वारा स्वयं को परखने का पर्व है। विकास की नई संभावनाओं को शुरुआत देने का पर्व है। हम सब शुभकामना करते हैं एक-दूसरे के प्रति कि हमें सदा याद रहे–जीत हमेशा सच की होती है।

होली उन लोगों के लिए एक प्रेरणा है जो मुखौटों की तरह औरों के साथ दुहरेपन का जीवन जीते हैं। स्वार्थों की ओट में बाहर और भीतर जिनका व्यवहार और भाव एक-सा नहीं होता है। छलनाओं से औरों को छलना, दिखावा, प्रदर्शन और प्रलोभनों के बहाव में बहा ले जाकर उनसे कोई भी गलत काम करवा लेना, धोखा देना, झूठ बोलना, कथनी-करनी में फर्क रखना–ऐसी बहुत-सी मन की नकारात्मक भावधाराएं होती हैं जिन्हें होली जैसे सांस्कृतिक पर्व पर अगर हम मिटाने का संकल्प करें तो इस पर्व की सार्थकता स्वयं उपलब्धि बन सकती है।

यह पर्व आईना देता है ताकि होली खेलते समय लगे चेहरों के भद्दे रंगों को साफ कर सकें। जरूरी नहीं कि जिन्दगी में हमें जो रंग अच्छे लगे वही सच में अच्छे हों। दूसरों के प्रिय रंगों में भी सौन्दर्य हो सकता है। जीवन का सच सामने है कि रंगों की विविधता की तरह ही हम जिन्दगी जीते हैं। ईमानदार, प्रामाणिक, निष्ठाशील, न्यायप्रिय, सत्यवादी और विश्वासी व्यक्ति को दोस्ती के नाम पर अथवा अपनेपन के बहाने कभी-कभी स्वार्थी लोग कब, कहां, कैसे, धोखा दे जाए–कहा नहीं जा सकता और फिर सत्यनिष्ठ व्यक्ति के मन में अफसोस होता है कि कहीं व्यक्ति को समझने में मैंने ही तो गलती नहीं कर दी?

इस वर्ष होली पर लगने वाले हर रंग का हम अर्थ अवश्य समझें–तन के साथ मन को भी उन रंगों से अवश्य रंगें जो जीवन को नई परिभाषा दे सकें। आमोद-प्रमोद और आत्मीयता भरे इस त्योंहार पर जीवन व्यवहार में ऐसा कुछ घटित हो जिससे जीवन मूल्यों को हाशिए में न धकेला जाए। परिवार, समाज और देश के परिवेश में घटने वाली हिंसक वारदातें, अत्याचार, बलात्कार, शोषण, अन्याय जैसी विसंगतियां थम सकें। क्योंकि अखबार में बड़ी-बड़ी सुर्खियों में दिल दहला देने वाली घटनाएं पढ़कर अथवा टी. वी. पर समाचार सुनकर मात्र आह भर लेना ही पर्याप्त नहीं, अपेक्षा है उनके विरुद्ध सशक्त संघर्ष की और उन्हें जड़ से खत्म कर देने की।

इस बार होली खेलें तो लाल, हरा, पीला, नीला, सफेद–रंगों की भावात्मक ऊर्जा के साथ खेलें। क्योंकि हर रंग में जीवन्तता है और यही जीवन्तता विकास को नई दिशा देती है।

**–मुमुक्षु शान्ता जैन**

# रंगों से व्यक्तित्व की पहचान

आचार्य तुलसी

हमारे सामने जितने भी दृश्य पदार्थ हैं, उनमें कोई-न-कोई रंग होता है। रंग के कारण ही हम पदार्थ को देख पाते हैं। सूरज के प्रकाश में सात रंग होते हैं—लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, जामुनी, और बैंगनी। प्रकाश तरंग के रूप में होता है। उसका रंग तरंगों की लम्बाई पर निर्भर रहता है। तरंग की लम्बाई जितनी अधिक होती है, प्रकम्पन की आवृत्तियां कम होती जाती हैं। प्रकाश तरंग सूरज से प्रसारित होकर पदार्थ तक पहुंचती है। पदार्थ में सहज गुण होता है कि वह एक विशेष तरंगदैर्ध्य को छोड़कर शेष तरंगों को अपने में अवशोषित कर लेता है। इस प्रक्रिया से हमारी आंखें केवल एक ही रंग को पंकड़ पाती है।

जैन दर्शन के अनुसार पदार्थ में पांच रंग होते हैं—काला, पीला, नीला, सफेद और लाल। हम भौंरे को काला कहते हैं पर उसमें पांचों रंग विद्यमान हैं। अन्य रंगों वाले पदार्थों के बारे में भी यही समझना चाहिए। विज्ञान की अवधारणा से अन्य रंग तरंगें उस पदार्थ द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। परम्परा अवधारणा के अनुसार अमुक-अमुक रंग की प्रधानता के कारण पदार्थ विशेष रंग में प्रतिभासित होता है।

पदार्थ में रंग होते हैं, इसी प्रकार आभामण्डल में भी रंग होते हैं। जड़ और चेतन सभी द्रव्यों का आभा मण्डल बदलता रहता है। चेतन प्राणियों में भी मनुष्य के आभामण्डल में अधिक बदलाव की संभावना है। यह बदलाव उसके भावों, विचारों या परिणामों के बदलाव से जुड़ा हुआ है। जैसे-जैसे भाव बदलते हैं, वैसे-वैसे आभामण्डल के रंग बदलते जाते हैं। आयुर्वेद के आचार्यों की मान्यता है—

**'पित्तं पंगुः कफः पंगुः, पंगवो मलधातवः,**
**वायुना यत्र नीयन्ते, यान्ति तत्रेव मेघवत्।।'**

शरीर में स्थित पित्त, कफ, मल और धातुएं पंगु हैं। इनकी संचरणशीलता में प्रेरक तत्त्व वायु है। आकाश में मेघ होते हैं। जिस दिशा में वायु का रुख होता है, मेघ उसी दिशा में चले जाते हैं। इसी प्रकार पित्त, कफ आदि भी शरीरस्थ वायु के द्वारा शरीर में गति करते रहते हैं।

रंगों का बदलना या बिगड़ना भी व्यक्ति के हाथ की बात नहीं है। कब किसका रंग बदल जाता है, उसका अनुभव दूसरा तो क्या, स्वयं व्यक्ति भी नहीं कर सकता, पर बदले हुए व्यवहार के आधार पर रंगों के बदलाव का अनुभव किया जा सकता है। जिस व्यक्ति के मन में यह आस्था प्रगाढ़ हो जाती है कि रंग मनुष्य के व्यक्तित्व की पहचान के माध्यम बनते हैं, वह अपने रंगों को ठीक रखने का प्रयत्न कर सकता है, पर इस सचाई के प्रति संदेह करने वाले व्यक्ति भी हैं। ऐसे व्यक्तियों को मूढ माना गया है—

**'शंकास्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च,**
**दिवसे-दिवसे मूढमाविशन्ति न पंडितम्।।'**

संदेह के सैकड़ों स्थान हैं और भय के हजारों स्थान हैं। ये सब मूढ लोगों के लिए हैं। पंडित इनमें उलझे बिना करणीय के प्रति सजग रहते हैं। पंडित वह होता है, जो अपने-आपको पहचान लेता है।

यूनान की देवी डेम्फी ने एक बार घोषणा की-यूनान का सबसे बड़ा ज्ञानी सुकरात है। लोगों ने सुना। वे झूम उठे। कुछ लोग सुकरात को बधाई देने गए। सुकरात विस्मित था। उसने पूछा—'आप लोगों को हो

क्या गया? आप मुझे किस बात की बधाई दे रहे हैं?' एक व्यक्ति बोला–'आप हमारे देश में सबसे बड़े ज्ञानी हैं, यह बात हमको देवी डेम्फी ने बताई है।' सुकरात बोला–'आप सब भ्रान्ति में हैं। आपको जो कुछ कहा गया है–वह बिलकुल गलत है।' लोग दौड़ कर देवी के पास गए और बोले–'मां! तुमने जो कुछ कहा, सुकरात उसे अस्वीकार कर रहा है।' देवी ने कहा–'मैंने जो कुछ कहा है, सत्य कहा है।' लोग फिर सुकरात के पास आकर बोले–'हमारी देवी ईश्वर का रूप है। वह कभी गलत नहीं कहती। आप हमें झुठलाएं नहीं और हमारी बधाई स्वीकार करें।' सुकरात के सामने समस्या खड़ी हो गई। उससे निबटने की दृष्टि से वे बोले–'दो दिन पहले यह बात मेरे सामने आती तो मैं इसे स्वीकार कर लेता, पर अब नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने अपने आपको पहचान लिया है। मैं अपनी भूलों और अज्ञान को जानता हूं। ऐसी स्थिति में स्वयं को महाज्ञानी कैसे मान सकता हूं?'

कुछ लोग फिर देवी के पास पहुंचे। उन्होंने सुकरात के कथन को दोहरा दिया। देवी बोली–'जो व्यक्ति अपने अज्ञान को जानता है, वही सबसे बड़ा ज्ञानी हो सकता है।' जो अपने अज्ञान को नहीं जानता, उसके रंग बिगड़ जाते हैं। जो अपने अज्ञान को जानता है, वह अपने आपको जानता है। अपने आपको जानने वाला निष्काम है।

रंगों की दुनिया अद्भुत है। वे जिधर बहते हैं, व्यक्ति को उधर ही बहा लेते हैं। एक क्षण पहले जो व्यक्ति बड़ी-बड़ी बातें करता है, शेखी बघारता है, उसके जीवन में भी कोई हादसा होता है तो तत्काल उसके चेहरे का रंग उड़ जाता है। बड़े कहलाने वाले लोगों का रंग जब बदल जाता है तो उसका लाभ-अलाभ निकट रहे व्यक्ति को मिलता है।

एक मच्छीमार बहुत बड़ी मछली पाकर राजा को भेंट करने गया। राजा खुश हुआ। उसने मच्छीमार को एक हजार स्वर्ण मुद्राएं पुरस्कार में दी। वह खुशी से उछलता–कूदता चल रहा था। सहसा उसके हाथ से एक स्वर्णमुद्रा नीचे गिर पड़ी। मच्छीमार ने नीचे झुककर उस मुद्रा को उठा लिया। रानी राजा के पास ही बैठी थी। उसने राजा से कहा–'स्वामिन्! यह व्यक्ति इतना कंजूस है। आपके द्वारा प्रदत्त इनाम के योग्य नहीं है।'

कहा जाता है, राजा कानों के कच्चे होते हैं। इस कहावत को सही प्रमाणित करते हुए राजा ने मच्छीमार को अपने पास बुलाया और कहा–'तुमको हजार स्वर्णमुद्राएं मिल गईं फिर भी तुम्हारी कंजूसी की वृत्ति नहीं गई।' मच्छीमार बोला–'हुजूर! आपकी इतनी कृपा होने के बाद एक स्वर्णमुद्रा की कीमत ही क्या? मैंने इसे जमीन से उठाया, इसके पीछे बड़ा रहस्य है।' 'ऐसा क्या रहस्य है?'–राजा ने पूछा। मच्छीमार ने उत्तर दिया–'मुझे चिन्ता इस स्वर्णमुद्रा की नहीं, आपके नाम की है। इन सब स्वर्णमुद्राओं पर आपका नाम अंकित है। इनमें से कोई भी मुद्रा नीचे जमीन पर गिरी हुई रहे और किसी के पैरों के नीचे आ जाए तो आपकी कितनी बड़ी अवज्ञा होगी।'

यह बात सुनते ही राजा के चेहरे का रंग बदल गया। कुछ क्षण पहले मच्छीमार के प्रति जो अन्यथा भाव आया था, उसका लोप हो गया। इसे कहते हैं रंग बदलना। व्यक्ति स्वयं अनुभव कर सकता है कि वह दिन में कितनी बार रंग बदलता है। रंगों के आधार पर कुछ कहावतें भी प्रचलित हो गईं। जैसे–मुंह सफेद हो गया, आंखें लाल हो गईं, चेहरा (काला) स्याह हो गया आदि। इस संक्षिप्त विवेचन के आधार पर यह समझा जा सकता है कि जीवन के विकास और ह्रास में रंगों का क्या स्थान है? जो व्यक्ति अपने रंगों को पहचान लेता है, अपने आपको पहचान लेता है। जो स्वयं को अच्छी तरह पहचान लेता है, वह सबको जान लेता है। ❑

# उदय का महान् सूत्र : सामायिक

*आचार्य महाप्रज्ञ*

आगमकारों ने पूरी मनुष्य जाति का अध्ययन किया। केवल मनुष्यों का ही नहीं, प्राणी मात्र का, षड्जीवनिकाय का अध्ययन किया। मनुष्यों का विशेष अध्ययन किया, सुदीर्घ काल में होने वाले मनुष्यों को देखा, देखने के बाद एक निष्कर्ष सामने रखा। जैसे वैज्ञानिक सर्वेक्षण या परीक्षण के बाद एक निष्कर्ष प्रस्तुत करता है वैसे ही एक निष्कर्ष प्रस्तुत किया और वह निष्कर्ष एक चतुर्भंगी के रूप में है–

1. उदित-उदित
2. उदित-अस्तमित
3. अस्तमित-उदित
4. अस्तमित-अस्तमित।

● कुछ मनुष्य उदितोदित होते हैं, आरम्भ से लेकर अंत तक उदित रहते हैं। वे कभी अस्त नहीं होते। जीवन भर उनका सितारा चमकता रहता है। जब मृत्यु के पास जाते हैं तो उदित अवस्था में ही जाते हैं। पूरा जीवन उदित रहता है। उन्हें अस्त के क्षण का कोई अनुभव नहीं होता। सदा प्रकाशमान, दीप्तिमान, उज्ज्वल, प्रज्वलित और चमकते हुए रहते हैं। कभी मुरझाते नहीं हैं, कभी कुम्हलाते नहीं हैं। एक सदाबहार फूल की भांति उनका जीवन सदा विकस्वर रहता है।

● कुछ मनुष्य उदित-अस्तमित होते हैं। वे जन्म लेते हैं तब उदयकाल होता है, बड़े अच्छे लगते हैं; किन्तु जैसे-जैसे जीवन बीता, वे अस्ताचल की ओर चलते चले गए, सूरज ढलता चला गया। प्रारंभ में उदय और अंत में अस्त। जब जन्मे तब सितारा चमक रहा था। जब जीवन का क्रम आगे बढ़ा, सितारा अस्त हो गया।

● कुछ मनुष्य अस्तमित-उदित होते हैं। जब जन्मते हैं, अस्त जैसी स्थिति में होते हैं। बहुत साधारण अवस्था। पता ही नहीं चलता कि कोई पैदा हुआ है, किन्तु बाद में एकदम उदित हो जाते हैं, दुनिया के सामने आते हैं और सितारे की तरह चमकने लग जाते हैं।

● कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो जन्म के समय भी अस्तमित और अंतिम अवस्था में भी अस्तमित बने रहते हैं। वे ऐसे लोग हैं, जिन्होंने कभी उदय-काल देखा ही नहीं।

ये चार प्रकार के लोग हैं। इनके उदाहरण दिए जा सकते हैं। सूत्रकार ने स्वयं उदाहरण दिये हैं। उदितोदित के लिए उदाहरण दिया है भरत चक्रवर्ती का। वे भगवान ऋषभ के पुत्र थे। जन्म से उदित और अंतिम समय तक उदित रहे। कभी सितारा अस्त हुआ ही नहीं।

उदित-अस्तमित के लिए उदाहरण दिया है चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त का। जन्म के समय उदित था, यौवन में उदित था, किन्तु जैसे-जैसे अंतिम समय निकट आया, अस्त होता गया। जीवन भर राजसी सुख भोगने वाले की अंतिम अवस्था दयनीय रही। एक चरवाहे ने चक्रवर्ती की आंख फोड़ डाली। अंतिम समय अच्छा नहीं रहा, अस्त हो गया।

कुछ व्यक्ति अस्तमित अवस्था में पैदा होते हैं और कालान्तर में उदित हो जाते हैं। इसका उदाहरण हैं मुनि हरिकेशबल। चाण्डाल वंश में बुरी दशा में पैदा हुआ। बचपन बहुत बुरा बीता। इतना बुरा कि जगह-जगह से निकाल दिया गया। अवहेलना, अवमानना, अवज्ञा, तिरस्कार, अपमान–सब कुछ जहर की घूंट की तरह पीना पड़ा। जब हरिकेशबल मुनि बने, ऐसी शक्तियां जागृत हुईं कि देवता निरन्तर सेवा में रहने लग गये। अपनी तपस्या और दिव्य शक्ति से इतने प्रभावी बन गये कि ब्राह्मण पंडितों को उनके चरणों में नत होना पड़ा। एक दिन ब्राह्मणों ने कहा–'यहां तुम्हें भिक्षा नहीं मिल सकती। यह ब्राह्मणों के लिए है। यहां चाण्डाल आ नहीं सकता।' मुनि हरिकेशबल और ब्राह्मणों के मध्य लंबी चर्चा हुई। चर्चा के बाद ऐसी स्थिति बनी कि मुनि की अवज्ञा करने वाले मुनि के चरणों में प्रणत हो गए।

हरिकेशबल अस्त अवस्था में जन्मे, बाद में उदय होता गया और ऐसा उदय हुआ कि एक महान ऋषि और सर्व वन्दनीय बन गए।

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रारम्भ में भी अस्तमित होते हैं और जीवन के अंत तक अस्तमित बने रहते हैं। इस संदर्भ में उदाहरण दिया गया कालसौकरिक का। वह अस्त अवस्था में ही जन्मा और अस्त अवस्था में ही मरा। प्रतिदिन पांच सौ भैंसों को मारना कालसौकरिक कसाई का नियम था। श्रेणिक ने उसे कुएं में डाल दिया। इसलिए कि वह भैंसा न मार सके। कुएं में डालने के बाद श्रेणिक ने गुप्तचरों से कहा–जाओ, पता करो कि वह किस अवस्था में है? भैंसा तो नहीं मार रहा है? गुप्तचर जांच कर वापस आए, बोले–'महाराज! वह तो भैंसा मार रहा है।'

'अरे! अंधकूप में भैंसा कहां से आयेगा?'

'महाराज! वहां जो कीचड़ है, मिट्टी है या शरीर का मैल है, उसे हाथ में लेता है, भैंसे का आकार बनाता है, उसे मारते हुए बोलता है–एक मारा। फिर मिट्टी का दूसरा बनाया, उसे मारा और बोलता है–दो मारे। वह रोज इस प्रकार पांच सौ भैंसे मारने की प्रक्रिया कर रहा है।'

वह अस्त अवस्था में जन्मा और अस्त अवस्था में ही मरा।

चार प्रकार के लोग, चार प्रकार की श्रेणियां या वर्ग बन गये।

प्रश्न है ऐसा क्यों होता है? इसका कारण क्या है? हम कारण को खोजें। जो प्रारंभ में उदित है, वह जीवन-भर उदित रहेगा–इसका कारण क्या है, पहले पुण्य का उदय था, उदित अवस्था में जन्मा, किन्तु बाद में वह व्यक्ति ऐसा आचरण और व्यवहार करता है, ऐसा चिन्तन करता है कि पवित्र लेश्या को बढ़ाता चला जाता है, जिससे अस्त होने का कोई अवसर नहीं आता। वह पुण्य को क्षीण नहीं करता। जो आदमी शराबी, अपराधी और दुराचारी बनता है, वह पुण्य को क्षीण करता चला जाता है, वह अस्त हुए बिना नहीं रहता। जो व्यक्ति सदाचार, अहिंसा और करुणा की भावना, अनासक्ति और सबके प्रति प्रमोद की भावना, सबके साथ मैत्री का व्यवहार करता है, वह उदित ही रहता है, कभी अस्त नहीं होता। वह ऐसे पुण्यों का संचय और बढ़ा लेता है, जिससे अशुभ कर्म या पाप का उदय आते-आते रुक जाता है या वह निर्वीर्य हो जाता है और प्रबल पुण्य का उदय होता रहता है।

भरत उदित रहा। इसका कारण है–भरत चक्रवर्ती में जैसी अनासक्ति थी, वैसी अनासक्ति दुर्लभ है। इतना बड़ा साम्राज्य, इतनी बड़ी सेना, सब कुछ था किन्तु स्वयं एकदम निर्लिप्त रहे।

जहा पोमं जले जायं नोवलिप्पई वारिणा–जैसे कमल कीचड़ में पैदा होता है किन्तु कीचड़ से कभी लिप्त नहीं होता, सदा ऊपर बना रहता है। भरत सदा वैसे रहे, कोई अन्तर नहीं आया।

बहुत प्रसिद्ध प्रसंग है। भगवान ऋषभ से पूछा गया–'भगवन्! आपकी सभा में कौन व्यक्ति है जो मोक्ष में जायेगा?' भगवान ऋषभ ने उत्तर दे दिया–'भरत चक्रवर्ती।' यह सुनते ही सभा में खलबली मच गई। कितना बड़ा राज्य! कितना आरंभ-समारंभ! फिर भी मोक्ष में जायेगा? दूसरों की क्या बात करें, पक्षपात तो भगवान के घर में भी बहुत है। कुछ लोगों ने बात को मन में रख लिया, किन्तु एक तेजतर्रार चण्ड प्रकृति का व्यक्ति वहीं बोलने लग गया–'भगवन्! आप भी पक्षपात करते हैं। भरत मोक्ष में जायेगा तो नरक में कौन जायेगा?'

भरत ने सुना, अधिकारियों से कहा–'जैसे ही यह आदमी बाहर जाए, गिरफ्तार कर लेना।'

सभा सम्पन्न हुई। सब अपने घर की ओर लौटने लगे। जैसे ही वह आदमी बाहर आया, पुलिस ने उसको गिरफ्तार कर लिया। दूसरा दिन। चक्रवर्ती की राजसभा में उसे प्रस्तुत किया गया। चक्रवर्ती ने कहा–'तुम बोलना ज्यादा जानते हो?'

वह कांपने लग गया। सोचा, फंस गया। आदमी पहले बिना सोचे-विचारे बोल देता है। जब परिणाम आता है तब घबरा भी जाता है। जब तूफान आता है तब सारे वृक्ष के पत्ते ऐसे कांपते हैं मानो झूला झूल रहे हैं। कई बार तो ऐसा लगता है, जैसे कोई बच्चा शाखा और तने पर झूल रहा है। वह व्यक्ति झूलने लग गया, कांपने लग गया, बोला–'राजन्! मैंने अपराध किया है। आप क्षमा करें।'

भरत–'नहीं, क्षमा नहीं होगी। इसका तुम्हें दण्ड मिलेगा और दण्ड होगा मृत्यु-दण्ड।'

वह बहुत गिड़गिड़ाया, प्रार्थना की–'महाराज! कोई उपाय है छूटने का?'

भरत–'अगर तुम एक काम करो–एक तेल का लबालब भरा कटोरा हाथ में लो, पूरे अयोध्या नगर के बाजारों, चौराहों में घूमो और तेल की एक भी बूंद नीचे न गिरे तो तुम बच सकते हो। यदि तेल की बूंद नीचे गिर गई तो पुलिस का सिपाही तत्काल सिर धड़ से अलग कर देगा। बोलो, स्वीकार है यह शर्त?'

इस शर्त को सुनकर स्तब्ध रह गया, पर दूसरा जीवन बचाने का कोई उपाय भी नहीं था।

व्यवस्था कर दी, हाथ में भरा हुआ तेल का कटोरा दे दिया। वह चला, साथ में पुलिस चल रही है। राजा ने नगर में ऐसी व्यवस्था कर दी कि स्थान-स्थान पर गाना, बजाना, खेल, नाटक शुरू हो गए। वह पूरे नगर की परिक्रमा कर भरत चक्रवर्ती के सामने आया। चक्रवर्ती ने पूछा–'कोई तेल की बूंद गिरी?'

'महाराज! यदि गिरती तो मैं आप तक पहुंचता ही नहीं। ये अंगरक्षक वहीं काम तमाम कर देते। महाराज! अब क्षमा करें।'

भरत–'प्राण-दण्ड माफ है, पर यह तो बताओ कि नगर में तुमने क्या देखा? क्या सुना?'

'महाराज! केवल तेल का कटोरा देखा और मृत्यु दण्ड की आवाज सुनी। और न कुछ सुना, न कुछ देखा। देखा तेल के कटोरे को और सुनी मौत के नगाड़े की आवाज।'

भरत–'अरे! कैसे आदमी हो तुम? अमुक चौक में कितना बढ़िया नाटक हो रहा था, सैकड़ों आदमी उसे देख रहे थे। ऐसा बढ़िया नाटक भी तुमने नहीं देखा?'

'महाराज! मैं केवल मौत को देख रहा था, और कुछ नहीं देख रहा था। तेल का कटोरा या मौत–दो के सिवाय सामने कुछ नहीं था।'

भरत ने कहा–'भाई! मेरे सामने भी निरंतर मौत रहती है। तुम्हें सोचना चाहिए था कि भगवान ऋषभ ने किस आधार पर कहा? मैं छह खण्ड पर राज्य करता हूं, चक्रवर्ती का शासन है। ऐश्वर्य, ठाट-बाट,

धन-दौलत सब कुछ है, किन्तु मैं न तो सुनता हूं, न देखता हूं। तुम एक जन्म की मौत से डर रहे थे और मैं अनंत-अनंत जन्म और मौतों से डर रहा हूं। यदि मैं सत्ता, संपदा और भोगों में लिप्त हो गया, आसक्त हो गया तो न जाने कितनी बार जन्म लेना पड़ेगा और कितनी बार मरना पड़ेगा। इसीलिए मैं इन सबसे ऊपर रह रहा हूं। सब कुछ हो रहा है, पर मैं उनसे न्यारा हूं।' उस व्यक्ति को ऋषभ के कथन का मर्म समझ में आ गया।

कुछ लोग चिंतन कम करते हैं। हर बात को स्थूल रूप में पकड़ लेते हैं। यह भी तथ्य है कि सबको उतनी गहरी दृष्टि प्राप्त नहीं होती। जो स्थूल बुद्धि वाले लोग होते हैं, वे स्थूल बात को पकड़ लेते हैं। सूक्ष्म बात को पकड़ने के लिए सूक्ष्म दृष्टि चाहिए। जो व्यक्ति पदार्थों में जीता है, वह उससे परे सोच भी नहीं पाता। आज व्यक्ति के सामने कितनी समस्याएं हैं–भोजन की समस्या, पानी की समस्या, मकान की समस्या, कपड़ों की समस्या और फिर बाद में सामाजिक जीवन में विवाह-शादी की समस्या, गहनों की समस्या। आज इन सबसे भी बड़ी समस्या है दहेज की। हर आदमी को कितनी चिंता रहती है। अनेक लोग हमारे पास आते हैं, कहते हैं–'महाराज! लड़कियां युवा हैं, कोई काम-धंधा नहीं है। लड़कियों की शादी कैसे करें? दहेज के बिना होती नहीं है।' कुछ लड़कियों ने कहा–'पिताजी! आप चिंता न करें। हम कुंआरी रह जाएंगी।' वे पिता की चिन्ता करती हैं। यह बड़ी समस्या है।

बावलास (मेवाड़) के एक श्रद्धालु श्रावक हुए हैं जोधराजजी। बहुत साधारण स्थिति में थे। उनकी पुत्रियां सुशील, सुन्दर और सुयोग्य थी। उन्होंने समाज के लोगों से कहा–'भाई! देखो, इनकी शादी करनी है पर मेरे पास देने के लिए कोई दहेज नहीं है, न बरात को भोजन कराने का सामर्थ्य है। किसी को सुशील लड़की चाहिए तो दो-चार बराती के साथ आ जाओ। मीठा चावल खिला दूंगा, एक थाली और एक लोटा दे दूंगा। बस, इसके सिवाय मेरे पास कुछ भी नहीं है।' किन्तु उस व्यक्ति का ऐसा कोई पुण्य-प्रभाव रहा कि सातों लड़कियां अच्छे घरों में गईं। इस प्रकार की घटनाएं विरल मिलती हैं, किन्तु ऐसी घटनाएं निरंतर पढ़ते और सुनते हैं कि दहेज के कारण कितने अनर्थ होते हैं। दहेज के कारण न जाने कितनी लड़कियां कुंवारी रहती हैं, कितनी लड़कियां शादी के बाद जला दी जाती हैं। कितना तिरस्कार और अपमान किया जाता है। पति, सास, श्वसुर, ननद, देवरानी, जेठानी न जाने कितने ताने कसती हैं, जलील करती रहती हैं। इस स्थिति में वह तनाव का जीवन जीती हैं या स्वयं आत्महत्या करती हैं या दूसरे जला देते हैं। यह भयंकर समस्या है। इस समस्या से समाज तब छुटकारा पा सकता है जब धन का लोभ कम हो, आसक्ति कम हो, मूर्च्छा कम हो। मूर्च्छा और आसक्ति तब कम होती है जब यह चिन्तन पुष्ट होता रहता है–मुझे सदा उदित रहना है, कभी अस्त नहीं होना है।

आचार्य भिक्षु जनमे तब उदित अवस्था में थे। गृहस्थ जीवन में भी बहुत होशियार और चतुर व्यक्ति के रूप में माने जाते थे। बुद्धि प्रबल थी, योग्यता थी, ऐसी मान्यता थी। बुद्धि का कौशल बचपन से ही अद्भुत था। बाद में बुद्धि से आगे चले गये, अतीन्द्रिय चेतना अथवा प्रज्ञा की भूमिका में चले गये।

आचार्य भिक्षु गृहस्थ जीवन में भी बड़े उदित थे। जब जोधपुर राजा के दीवान ने कहा–'भीखणजी! आपकी बुद्धि तो ऐसी है कि नौ कोटि मारवाड़ राज्य का संचालन कर सकती है।' तब आचार्य भिक्षु ने कहा–

**बुद्धि वाहि सराहिए, जो सेवै जिन धर्म।**
**वा बुद्धि किण काम री, जो पड़िया बांधे कर्म।।**

मुझे वह बुद्धि नहीं चाहिए, जिससे कर्म का बंध हो। वही बुद्धि प्रशंसनीय होती है, जिससे कर्म के बन्धन टूटे।

उनमें बुद्धि का ऐसा कौशल था कि हर बात

का समाधान खोज लेते। जब प्रज्ञा की भूमिका में चले गये तो और अधिक उदित हो गये।

शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनु–शुद्ध बुद्धि कामधेनु की तरह होती है, जो चाहो सो मांग लो। जब प्रज्ञा के लोक में चला जाए तब तो उसकी स्थिति ही विलक्षण हो जाती है, व्यक्ति उदितोदित बना रहता है।

मैंने पूज्य गुरुदेव तुलसी के जीवन को गहराई से देखा है, गहराई से पढ़ा है। जो विकास चार-पांच दशक पहले नहीं था, वह विकास हुआ है। कारण क्या है? लोग कहते हैं–अवस्था ढलती है तो विकास भी कम होता जाता है। यहां अवस्था के साथ-साथ विकास और बढ़ रहा है। इसका क़ारण है–निरन्तर अप्रमाद, निरन्तर जागरूकता, निरन्तर पवित्रता का विकास। यह जहां होता है, वहां उदय निरन्तर बढ़ता चला जाता है। जहां प्रमाद है, वहां बुढ़ापा आ जाता है। किसी को साठ वर्ष आए, कहने लग गया–हम तो बूढ़े हो गये। मैंने कहा–अरे! अभी तो साठ के हुए हो, बूढ़े कहां हो गये? आगम साहित्य कहता है कि सत्तर वर्ष पहले तो कोई बूढ़ा बनता ही नहीं है। बुढ़ापे का पहला दिन कौन-सा है? सत्तर पूरे हो गये, 71वें वर्ष का पहला दिन बुढ़ापे का प्रारम्भ दिन है।

एक धारणा यह रही–साठी बुद्धि नाठी। साठ के हो गए, बुद्धि नष्ट हो गई। पता नहीं यह कैसे लिखा। वस्तुतः अवस्था के साथ अनुभव का विकास होता है। आधुनिक वैज्ञानिक जगत की नई मान्यता भी यह है–जो व्यक्ति साठ वर्ष के बाद मस्तिष्क से जितना काम लेता है, उतना ही विकास होता है, उतनी आयु भी दीर्घ हो जाती है। जो मस्तिष्क से काम नहीं लेता, उसका विकास नहीं होता, वह जल्दी मरता है, अल्पायु हो जाता है। तेरापंथ का जो विकास हुआ है, इसका कारण है–अप्रमत्तता, जागरूकता, पवित्रता, निरन्तर ज्ञान की आराधना, दर्शन की आराधना, चरित्र की आराधना, सम्यक् दृष्टिकोण, विधायक दृष्टिकोण। सदा अच्छाई को देखा, कभी बुरी बातों में ध्यान केन्द्रित नहीं किया। जो बुरी बात पर ज्यादा ध्यान देता है, वह कभी उदित नहीं रह सकता। बुराई को मत देखो। जानो, प्रतिकार करो पर बुरा चिन्तन मत करो। ईर्ष्या करोगे, अगले का बिगड़ेगा या नहीं, पर तुम्हारा तो निश्चित बिगड़ जायेगा। क्रोध करोगे, सामने वाले का कुछ अहित होगा या नहीं, तुम्हारा अहित निश्चित हो जायेगा। यह धर्म का एक बड़ा मर्म है।

मैंने कल कुछ विद्यार्थियों से पूछा–'भूख लगती है तो भूख किससे मिटती है? रोटी से बुझती है या धर्म से?'

विद्यार्थी–'रोटी से।'

'प्यास लगती है तो किससे मिटती है? पानी से या धर्म से?'

विद्यार्थी–'पानी से।'

'कपड़ा चाहिए। पैसे से मिलता है या धर्म से?'

विद्यार्थी–'पैसे से।'

'मकान चाहिए तो किससे मिलता है?'

विद्यार्थी–'पैसे से।'

'तो फिर धर्म क्यों करते हो? धर्म का मतलब क्या है? रोटी, पानी, कपड़ा, मकान–ये सब पैसे से मिलते हैं फिर धर्म बीच में कहां से आया? क्यों धर्म करते हो?'

विद्यार्थी–'आत्म-शुद्धि के लिए।'

'ठीक बात है। आत्मा कहां है? कौन कहेगा कि आत्मा है। यदि तुम अपनी स्कूल के विद्यार्थियों से कहोगे कि आत्म-शुद्धि के लिए धर्म करना चाहिए तो क्या वे समझ पाएंगे?'

विद्यार्थी–'नहीं, गुरुदेव! फिर उन्हें कैसे समझाया जाए?'

रोटी, पानी–ये सारे शरीर बल से जुड़े हुए हैं। धर्म करना है मनोबल बढ़ाने के लिए। मनोबल कब बढ़ेगा? भावशुद्धि होगी, विधायक चिंतन, विधायक भाव पुष्ट होता रहेगा तो मनोबल बढ़ेगा। जहां

निषेधात्मक भाव या चिन्तन आया, वहां मनोबल टूट जायेगा। धर्म के क्षेत्र में इसलिए आते हैं कि हमारा मनोबल बढ़ता रहे। मनोबल तब बढ़ेगा, जब सोचने का तरीका सही हो, दृष्टिकोण विधायक हो, न कलह, न ईर्ष्या, न द्वेष। अठारह पाप से बचने का जितना प्रयत्न, उतना मनोबल बढ़ेगा। अठारह पापों में जितनी संलिप्तता, उतना मनोबल घटेगा।

इसको इस भाषा में भी कहा ज़ा सकता है–जो सामायिक करता है, उसका मनोबल बढ़ेगा। सामायिक का मतलब ही है–अठारह पाप का त्याग। सामायिक स्वीकार करते समय व्यक्ति सावद्य योग का प्रत्याख्यान करता है। सावद्य योग का मतलब है अठारह पाप। सामायिक करने वाले व्यक्ति को अठारह पाप का नाम याद रहना चाहिए। यदि अठारह पाप का नाम याद नहीं है तो फिर सामायिक का अर्थ कहां समझा ? जिसको अठारह पाप का नाम याद नहीं है, वह सामायिक कैसे करेगा ? सामायिक में किसका प्रत्याख्यान करेगा ? जो अठारह पाप का त्याग करता है वह उदितोदित रहता है, उसका उदय बढ़ता चला जाता है, वह कभी अस्त नहीं होता। यदि आप यह चाहते हैं–मेरा निरंतर उदय रहे, कभी अस्तकाल न आए, जीवन में सुख-सम्पदा और शांति रहे तो आपको अवश्य सामायिक करनी चाहिए। वही सही अर्थ में सामायिक करता है, जो अठारह पाप को जानता है और उनका प्रत्याख्यान करता है।

सामायिक करें और अठारह पाप का ठीक ज्ञान न हो तो सामायिक का पूरा लाभ नहीं मिलता। जिसको उदित रहना है उसके लिए सामायिक करना और सामायिक के अर्थ को समझना जरूरी है। जो व्यक्ति पवित्रता के साथ, एकाग्रता के साथ सामायिक करता है, दृढ़ विश्वास है–वह कभी अस्त नहीं होगा, सतत उदितोदित रहेगा। ❑

## सही सीख

| | |
|---|---|
| देखना है तो– | खुद को देखो |
| दिखाना है तो– | कौशल दिखाओ |
| करना है तो– | भलाई करो |
| पाना है तो– | इज्जत पाओ |
| देना है तो– | दया, प्रेम दो |
| बोलना है तो– | सत्य बोलो |
| बनना है तो– | अच्छे इनसान बनो |
| हारना है तो– | दुष्कर्म से हारो |
| जीतना है तो– | इन्द्रियों को जीतो |
| मरना है तो– | यशस्वी बनो। |

# धृति धारण करो

आचार्य महाश्रमण

आदमी के जीवन में धृति की शक्ति होनी चाहिए। जिसमें धृति होती है, उसकी आत्मा निर्मल रहती है, वह सुखी रहता है। जिसमें धृति का अभाव होता है, वह व्यक्ति संकल्प-विकल्पों के वशीभूत होकर पग-पग पर विषादग्रस्त हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में धृति के तीन प्रकार बताए गए हैं—सात्विक धृति, राजस धृति और तामस धृति। सात्विक धृति के बारे में गीताकार ने कहा—

**धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः।**
**योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्विकी।।18/33**

जिस अव्यभिचारिणी धारणशक्ति से मनुष्य मन, प्राण और इन्द्रियों की गतिविधियों को धारण करता है। हे अर्जुन! वह धृति सात्विक प्रकार की होती है।

धृति यानी धारण करने की शक्ति। सात्विक धृति वह होती है, जिस धृति के द्वारा आदमी योग-साधना व ध्यान-साधना का अभ्यास करके प्राण, मन और इन्द्रियों के व्यापार को नियंत्रण में रख लेता है, उनको धारण कर लेता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में मन और भाव के बारे में अनेक तथ्य मिलते हैं। वहां कहा गया है कि हमारे भाव विभिन्न होते हैं। मनोज्ञ और अमनोज्ञ भाव हमारे मन में आ जाते हैं। उन सबको सहन करना और उत्तेजना का अवसर आ जाने पर भी अपने आपको उत्तेजित न होने देना, यह धीरता की बात है। सचमुच! विकार का हेतु मिल जाने पर भी जिनके चित्त विकृत नहीं होते हैं, वे व्यक्ति धीरपुरुष कहलाते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने जीवन में कष्ट आ जाने पर भी कभी न्याय मार्ग से विचलित नहीं होते। हम धृति का विकास करने का प्रयास करें। हमारी आस्था सचाई पर हो, अच्छाई पर हो। हम न्याय के पथ पर चलने का प्रयास करें।

हमारी धृति इतनी सुन्दर, स्वच्छ और सात्विक हो कि हमारे भीतर अपने मन, प्राण और इन्द्रियों पर नियंत्रण करने की शक्ति विकसित हो जाए।

धृति आदमी के जीवन का एक गुण होता है, परंन्तु सबमें एक समान धृति का स्वरूप नहीं होता। किसी व्यक्ति में सात्विक धृति होती है तो किसी में राजसी धृति होती है और किसी में तामसी धृति भी होती है। सात्विक धृति बहुत उत्तम कोटि की होती है। उसमें योग-ध्यान-साधना के द्वारा मन, प्राण और इन्द्रिय-व्यापार को संतुलित व नियमित किया जाता है। राजसी धृति के साथ आसक्ति जुड़ी हुई रहती है और तामसी

धृति तो और भी निकृष्ट होती है। राजसी धृति के बारे में श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से श्रीकृष्ण कहते हैं–

**यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।**
**प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी।।**

18/34।।

जिस धृति के द्वारा फल की इच्छावाला मनुष्य अत्यन्त आसक्ति से धर्म, अर्थ और कामों को धारण करता है, हे अर्जुन! वह धृति राजसिक प्रकार की होती है।

भारतीय वाङ्मय में त्रिवर्ग बताया गया है–धर्म, काम और अर्थ। हम विचार करें कि मनुष्य के जीवन में इन तीनों के सिवाय और कुछ भी है क्या? मनुष्य के जीवन में या तो धर्म दिखाई देगा या अर्थ दिखाई देगा या काम दिखाई देगा। पुरुषार्थ चतुष्टय में एक चौथा तत्त्व माना गया है–मोक्ष। हम मोक्ष की बात को एक बार छोड़ दें, केवल त्रिवर्ग पर विचार करें। जिस आदमी के जीवन में त्रिवर्ग ठीक तरह नहीं होता है यानी पैसा भी पूरा नहीं है, काम भी नहीं है और न जीवन में धर्म का प्रभाव है, उस आदमी के जीवन को एक मुर्दे की तरह कहा जा सकता है। जैसे लौहार की धौंकनी संकुचित-विकुचित होती है, परन्तु वह सप्राण नहीं कहलाती। इसी तरह श्वास लेने और छोड़ने के कारण आदमी का पेट संकुचित-विकुचित होता है। इतने मात्र से आदमी को सजीव नहीं कहा जा सकता। गीताकार ने कहा कि राजसी धृति उसमें होती है, जिस आदमी का धर्म, काम और अर्थ के प्रति आसक्ति का भाव होता है। धर्म के साथ भी यह फलाकांक्षा जुड़ जाती है या आसक्ति जुड़ जाती है कि मैं धर्म करूं तो इसका मुझे अमुक फल मिलना चाहिए।

गार्हस्थ्य में धर्म, अर्थ और काम–इन तीनों में सामंजस्य होना आवश्यक है। जैसे एक गृहस्थ को अर्थ भी चाहिए। उसे अर्थ-प्राप्ति के लिए प्रयास भी करना पड़ता है। पैसा नहीं है तो जीवन में कई बातों की कमी रह जाती है। कइयों के पास बहुत अर्थ होता है। जो अर्थ-सम्पन्न व्यक्ति हैं, उन्हें कभी अर्थ का घमण्ड नहीं करना चाहिए। अर्थ का क्या पता, आज है और कल न भी रहे। वह कब करोड़पति से रोड़पति बन जाए। इसलिए अर्थ के प्रति ज्यादा मोह या आसक्ति का भाव नहीं रखना चाहिए। आदमी को अनासक्ति का भाव बढ़ाना चाहिए, त्याग की चेतना बढ़ानी चाहिए और धन का कभी दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। गलत कार्यों में धन का नियोजन नहीं करना चाहिए। ये बातें अर्थ के साथ जुड़ जाती हैं तो अर्थ अनर्थ होने से बच सकता है। अन्यथा अर्थमनर्थं भावय नित्यम् अर्थात् यह अर्थ अनर्थकारी भी बन जाता है। प्राचीन साहित्य में कहा गया कि तुम गृहस्थ हो तो अर्थ के पीछे इतने ज्यादा मत पड़ो कि धर्म छूट जाए और काम में भी कमी आ जाए। काम के पीछे भी इतने ज्यादा मत पड़ो कि अर्थार्जन कम हो जाएं और धर्म भी छूट जाए। धर्म के पीछे भी इतने ज्यादा मत पड़ो कि अर्थ और काम दोनों बाधित हो जाए। जैसे कोई गृहस्थ यह सोचे कि मैं तो दिनभर सामायिक करूंगा, साधुओं के ठिकाने में ही रहूंगा तो उसका गार्हस्थ्य कैसे चलेगा? घर में अर्थ की अपेक्षा है और कमाई नहीं करता है तो घर के बाल-बच्चे क्या खाएंगे? गृहस्थ के लिए अर्थ, काम और धर्म–इन तीनों में संतुलन होना आवश्यक है। अर्थ और काम पर धर्म का अंकुश होता है तो अर्थ और काम भी संतुलित रहेंगे। अगर धर्म के बैनर के नीचे अर्थ और काम होता है तो वे सुशृंखल रहेंगे और यदि धर्म का बैनर नहीं रहेगा तो फिर अर्थ और काम उच्छृंखल भी हो सकते हैं। इसलिए गीताकार ने कहा कि गृहस्थ को धृति के द्वारा धर्म, अर्थ और काम–इन तीनों को धारण करना चाहिए। साधना करनेवाला साधु अर्थ की आसक्ति से भी बचे और काम से भी बचे, पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन जीए, परन्तु जो गृहस्थ है उसके लिए काम भी मान्य है, अर्थ भी मान्य है और साथ में धर्म का योग भी मान्य है। केवल भोग जीवन में न हो, योग भी जीवन में होना चाहिए। केवल राग जीवन में न हो, विराग या त्याग भी जीवन में होना चाहिए।

आदमी मनोरंजन करता है और मनोरंजन के लिए कितने-कितने रमणीय दृश्य देखता है, बातें करता है, हंसी-मजाक करता है। मनोरंजन के साथ आत्मरंजन को भी याद रखना चाहिए, आत्मरमण करना चाहिए। मनोरंजन का सुख तो भौतिक सुख है, तात्कालिक सुख है। आत्मरंजन या आत्मरमण का सुख परम सुख होता है। आदमी को केवल शरीर में नहीं रहना चाहिए, उसको आत्मा की ओर भी ध्यान देना चाहिए। केवल भौतिकता में नहीं रहना चाहिए, उसको आध्यात्मिकता की ओर भी ध्यान देना चाहिए। केवल मन, वाणी और शरीर तक ही नहीं रहना चाहिए, बल्कि मन, वाणी, शरीर से आगे अमन, अवाक् और अशरीर की भूमिका का भी विचार करना चाहिए, चिन्तन करना चाहिए। हम दिनभर बोलें ही नहीं, बल्कि न बोलना भी सीखें। हम दिनभर सोचें ही नहीं, बल्कि निर्विचार होने का भी अभ्यास करें। दिनभर शरीर से क्रियाएं ही न करें, बल्कि स्थिरता का भी अभ्यास करें। भौतिकता पर आध्यात्मिकता का अंकुश रहना चाहिए। जिसमें फल की आकांक्षा रहती है, उस धृति को गीताकार ने राजसी धृति की संज्ञा दी है। आदमी को राजसी धृति से सात्विक धृति की ओर प्रस्थान करना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता में तामसी धृति का वर्णन करते हुए कहा गया है–

**यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।**
**न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ।।**18/35।।

जिस धृति के द्वारा कोई मूर्ख व्यक्ति निद्रा, भय, शोक, विषाद और अभिमान को नहीं त्यागता, हे पार्थ! वह तामसिक प्रकार की धृति होती है।

धृति का मतलब है पकड़कर रखना, धारण करना। धारण अच्छी बात को भी किया जा सकता है और धारण गलत चीज को भी किया जा सकता है। तामसी धृति के अन्तर्गत आदमी विकारों को धारण करता है या दुर्गुणों को धारण करता है, इसलिए वह धृति तो होती है, परन्तु तामसी धृति होती है। पहला तत्त्व है–निद्रा। जिसकी नींद ज्यादा लेने की आदत होती है, वह तामसी धृतिवाला व्यक्ति होता है। यद्यपि निद्रा शरीर के लिए, स्वास्थ्य के लिए आवश्यक भी है। आवश्यक निद्रा न ली जाए तो शरीर में कठिनाई पैदा हो सकती है। हम श्रम करते हैं तो शरीर को विश्राम की भी अपेक्षा होती है। अगर आदमी चार दिन बिल्कुल भी न सोए और काम ही काम करता रहे तो आखिर शरीर जवाब देने की स्थिति में आ जाएगा यानी शरीर की मांग है कि मेरे से श्रम लो, पर साथ में मुझे विश्राम भी दो। श्रम और विश्राम का संतुलन रहना चाहिए। वृद्धावस्था आने के बाद निद्रा की अपेक्षा कम हो सकती है। नींद जल्दी जाग जाए और निद्रा की अपेक्षा ज्यादा न रहे तो आदमी भले कम नींद ले, परन्तु जितनी नींद की अपेक्षा शरीर को है, उतनी लेनी चाहिए।

एक बच्चा सात-आठ घंटा भी सो सकता है तो एक युवा की नींद छह घण्टे में भी पूरी हो सकती है। अपेक्षित नींद से ज्यादा नींद लेने की आदत या आलस्य की आदत का होना और नींद में ऐसे-वैसे सपने आना, इस प्रकार की स्थिति का होना तामसी धृति का एक लक्षण होता है।

दूसरा तत्त्व है–भय। जिसमें भय की संज्ञा है, जो भय को पकड़े रखता है, बात-बात में डरता है, उसमें तामसी धृति होती है। जैन वाङ्मय में चार संज्ञाएं अथवा दस संज्ञाएं बताई गई हैं। उनमें एक संज्ञा है–भय संज्ञा। प्रायः बच्चों को डर लगता है। रात को अंधेरे में बाहर जाना भी उनके लिए कठिन होता है। यदि वे रात्रि में भूत आदि की बात सुन लेते हैं तो कभी-कभी रात को नींद आना भी कठिन हो जाता है। अनेक बार हम काल्पनिक भय से डर जाते हैं। पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री महाप्रज्ञजी जब छोटी अवस्था में थे, तब एक रात किसी ने भूत आदि की बातें सुना दीं। फिर रात को उनको नींद आनी मुश्किल हो गई। बचपन में ऐसी बातें सुन ली जाती हैं तो फिर रात को कई बार वे ही चीजें दिखने लग जाती हैं। यह भय की संज्ञा है। किसी व्यक्ति में प्राणी विशेष के

प्रति भय की संज्ञा होती है, जैसे–कोई आदमी चूहे से डरता है। हालांकि आदमी के सामने चूहा छोटा प्राणी होता है, किन्तु कोई ऐसी भय संज्ञा बैठ जाती है कि फिर चूहे का नाम भी आ जाए या चूहा दिख भी जाए तो आदमी को डर लगने लगता है। किसी को बिल्ली से डर लगता है, किसी को सर्प से तो किसी को छिपकली से डर लगता है। यह प्राणी विशेष के संदर्भ में होने वाली भय संज्ञा है। आदमी अभ्यास के द्वारा, संकल्प के द्वारा या कुछ आलम्बन के द्वारा अभय की साधना कर सकता है। हमारे पास तो नवकार मंत्र जैसा इतना पवित्र और शक्तिशाली मंत्र है, फिर हमें तो डरने की जरूरत ही नहीं है। आदमी को जब भय लगे तो जिसका जो आस्था का केन्द्र है, उसका स्मरण कर लिया जाता है तो डर की स्थिति को काफी पार किया जा सकता है। भय एक गुब्बारा है। हम उसमें सूई से छेद कर दें तो वह गुब्बारा फूट सकता है और वास्तविकता सामने आ सकती है।

तीसरा तत्त्व है–शोक। जब प्रिय का वियोग हो जाता है, तब मन में शोक भी हो जाता है। हमारी साधु संस्था में कोई दिवंगत हो जाता है तो शोक करने की प्रथा नहीं है, परन्तु गृहस्थों में यह प्रथा चलती है। गृहस्थों में कोई दिवंगत हो जाए तो कई दिनों तक उसका शोक भी रखा जाता है। शोक के बारे में मेरा विचार है कि आदमी शोक न करे, पर संयम का अभ्यास करे। कोई प्रिय व्यक्ति चला जाए तो आदमी यह सोचे कि घर में मृत्यु का प्रसंग हो गया, इसलिए सात दिन, दस दिन अथवा अमुक समय तक हम आध्यात्मिक अनुष्ठान करेंगे, धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ेंगे, संतों के दर्शन करेंगे आदि। महामना गुरुदेव तुलसी और परमपूज्य गुरुदेव महाप्रज्ञजी का जब महाप्रयाण हुआ था, तब हमने एक सप्ताह तक आध्यात्मिक अनुष्ठान किया था। हमने शोक को दूसरा रूप दे दिया कि इस सप्ताह में विशेष रूप से गुरुदेव की स्मृतियां करें, जप करें, सभाएं करें। मन में दुःख के रूप में शोक हो सकता है, किन्तु उसको आध्यात्मिकता का रूप दे दिया जाए तो माहौल अलग बन जाता है। जब कभी मृत्यु का संवाद आता है और मैं संदेश देता हूं तो यह बात प्रायः कहता हूं कि तुम नवकार मंत्र आदि के जप का प्रयोग करो ताकि घर का धार्मिक माहौल बन जाए। इस प्रकार शोक भी एक विकार है, जो तामसी धृति का लक्षण है।

चौथा तत्त्व है–विषाद। आदमी के मन में कई बार विषाद या दुःख हो जाता है। महाभारत में जब युद्ध का प्रसंग सामने था, तब अर्जुन को भी विषाद हो गया था। उसने कहा–'युद्ध में अपने लोग हैं, इनके साथ मैं कैसे लड़ूंगा?' मन में एक विषाद का भाव पैदा हो गया। आदमी कई बार डिप्रेशन में चला जाता है, अवसाद में चला जाता है, यह भी विकार है और तामसी धृति का लक्षण है।

पांचवां तत्त्व है–अहंकार। आदमी यह सोचे कि जो कुछ मुझे प्राप्त हुआ है, मैं उसका उपयोग करूं या उसका त्याग करूं, संयम करूं, परन्तु उसका अहंकार न करूं। अभिमान मदिरापान के समान है। जैसे–

मदिरापान से उन्मत्तता आ जाती है, वैसे ही अहंकार से आदमी अंधा बन जाता है। धन की, ज्ञान की अथवा कोई भी सम्पदा मिल जाती है तो मद आंखों वालों को भी अंधा बना देती है, कानों वालों को भी बहरा बना देती है। अहंकार के कारण न आदमी दूसरों की सुनता है और न किसी को सम्मान देता है। अपने आपको बहुत कुछ या सब कुछ मान लेता है। चारों ओर एक प्रकार का अन्धत्व व्याप्त हो जाता है।

गीताकार ने कहा कि मद भी एक विकार है। जो मदोन्मत्त रहता है, उसमें तामसी धृति होती है। दुष्ट बुद्धिवाला व्यक्ति अपने विकारों को छोड़ने का प्रयास नहीं करता, परन्तु ज्ञानी आदमी विकारों को छोड़ने का प्रयास करे। ❑

# अपने पांवों पर कुल्हाड़ी न चलाएं

❑ ❑ ❑

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

भारतीय संस्कृति के चार स्तम्भ हैं—चरित्र, समानता, स्वतन्त्रता और भाईचारा। इन चार खंभों पर संस्कृति का विशाल भवन खड़ा है। इनमें सबसे पहला स्तम्भ है—चरित्र। चरित्र व्यक्तित्व का ऐसा पक्ष है, जो सबसे अधिक मुखर होता है। चरित्र की दृष्टि से दमदमाता चेहरा अपनी जो पहचान बनाता है, उसके सामने अन्य सब बातें गौण हो जाती हैं। चरित्रवान बनने के लिए चरित्र में आस्था का होना नितान्त अपेक्षित है। चारित्रिक आस्था में स्थिरता आती है लक्ष्य या दृष्टि की स्पष्टता से। जब तक लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता, दृष्टिकोण सम्यक् नहीं हो सकता। सम्यक् दृष्टि चरित्र के प्रति निष्ठा पैदा करती है। निष्ठा का अर्थ है कठिन से कठिन परिस्थिति में भी चरित्र की सत्ता को प्रकम्पित कर देने वाले विकल्प का अभाव। मन में कोई दूसरा विकल्प तभी उत्पन्न हो सकता है, जब व्यक्ति अपनी स्थिति से सन्तुष्ट नहीं हो पाता। सन्तोष एक नैतिक मूल्य है जबकि असन्तोष का लावा पिघलकर व्यक्ति को विकलांग बना देता है। यह विकलांगता केवल शरीर तक ही सीमित नहीं रहती, व्यक्ति की चेतना को खण्ड-खण्ड में विभक्त कर देती है। खण्डित मन से कभी भी अखण्ड व्यक्तित्व का निर्माण नहीं हो सकता। इसलिए चरित्र बल को पुष्ट रखना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

चारित्रिक दुर्बलता का एक बड़ा कारण है असमानता। जो व्यक्ति स्वयं को दूसरों की तुलना में श्रेष्ठ स्थापित करना चाहता है, वह समानता के सिद्धान्त को विस्मृत कर देता है। किसी को हीन या अधिक मानने का मनोभाव असमानता के धरातल पर ही अंकुरित होता है। हर व्यक्ति को सुख प्रिय होता है और दुःख अप्रिय होता है। यद्यपि सुख-दुःख की परिभाषा भी मनुष्य की बुद्धि-कल्पित है। फिर भी एक ही जीवन में अनेक बार इन विरोधी परिस्थितियों को जीने वाला व्यक्ति प्रियता और अप्रियता के भाव को समाप्त कर प्राणी मात्र के प्रति तादात्म्य का अनुभव करने लगे तो समानता की बात सहज रूप से जीवन के साथ जुड़ सकती है।

स्वतंत्रता जीवन का एक ऐसा मूल्य है, जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की अस्मिता के साथ जुड़ा हुआ है। जिस व्यक्ति, समाज या राष्ट्र की स्वायत्तता खण्डित होती है, वह बौखला उठता है। बौखलाहट की स्थिति में करणीय और अकरणीय का विवेक चुक जाता है। विवेक मनुष्य के व्यक्तित्व का ऐसा घटक है, जो उसे अपनी इच्छा से अपने व्यक्तित्व को गढ़ने की सुविधा देता है। जो व्यक्ति पूरी तरह से पर-निर्भर होता है, वह अपने व्यक्तित्व या भाग्य का निर्माण स्वयं नहीं कर सकता।

भाईचारा आत्मौपम्य की भावना का प्रतीक है। यदि आत्मौपम्य की भावना का विकास नहीं होता है, तो एक भाई को भाई के अस्तित्व से खतरा पैदा हो जाता है। लोहा लोहे को काटता है—यह उक्ति भाई-भाई पर लागू कर दी जाए तो ऐसे प्रसंगों की लम्बी सूची हो जाएगी, किन्तु अणुव्रत दर्शन अपने प्रशंसकों, समर्थकों, प्रचारकों और अन्य सभी लोगों

को एक ही दिशा दिखाता है विश्व-बन्धुत्व की। आत्मौपम्य, विश्व-बन्धुत्व, भाईचारा आदि एक ही पौधे के छोटे-बड़े फूल हैं। आवश्यकता है इन फूलों को सहेजकर रखने की।

भाईचारे के सिद्धान्त में जिसका विश्वास होता है, वह किसी को धोखा नहीं देता, किसी के प्रति आक्रामक नहीं होता, सब धर्म सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णुता का भाव रखता है, सामाजिक कुप्रथाओं का बोझ नहीं ढोता, व्यसनमुक्त जीवन जीता है, व्यवसाय में सत्य की साधना करता है और जाति आदि के आधार पर किसी को ऊंचा–नीचा नहीं मानता। मानवीय कर्तव्य की सूची में इन सब तत्त्वों का समावेश है। फिर भी व्यक्ति अपनी महत्त्वाकांक्षी योजनाओं और धारणाओं से प्रतिबद्ध होकर नैतिक तथा सामाजिक दायित्वों की उपेक्षा कर देता है। अपने द्वारा अपना अहित साधने की दिशा में उठा हुआ उसका यह कदम उसे कहां तक ले जाएगा, अनुमान लगाना कठिन है।

एक किसान अपने खेत में बीज बो रहा था। उधर से कोई व्यापारी निकला। उसने सहज भाव से पूछ लिया, क्या बो रहे हो? किसान को यह अच्छा नहीं लगा। उसने बताने से इनकार कर दिया। व्यापारी ने सहज भाव से कहा–जब खेत उगेगा, तब देख लेंगे। इस बात में किसान को अपना बौनापन दिखाई देने लगा। बिना कुछ सोचे-समझे उसके मुंह से निकल गया–भगवान करे यहां कुछ उगे ही नहीं।

खेत में कुछ उगे या न उगे। उससे व्यापारी को कोई लाभ नहीं मिलने वाला था, पर उसकी बात काटने के लिए किसान ने अपने हित को भी अनदेखा कर दिया। उस किसान की कोटि में आनेवाले न जाने कितने व्यक्ति हैं, जो मानवीय मूल्यों की अवहेलना कर अपने हाथों अपने पांवों पर कुल्हाड़ी चलाते हैं।

मानवीय एवं नैतिक मूल्यों का विकास मानव समाज में ही हो सकता है। बल्कि यह सहजता से होना चाहिए। इसके लिए किसी अतिरिक्त प्रयत्न की अपेक्षा भी नहीं है, किन्तु आज सब कुछ उलटा हो रहा है। अनैतिकता बिना सिखाए आ रही है और नैतिकता की सीख ऊपर-से-ऊपर चली जाती है। ऐसी स्थिति में एक सघन प्रयत्न की जरूरत है, जो मनुष्य की चेतना पर जमी हुई परतों को हटाकर उसे सही रास्ता दिखा सके। ❑

## जीवन की नौ निधियां

| | | |
|---|---|---|
| स्वास्थ्य | – | जीवन का भरपूर आनन्द ले सकें। |
| संयम | – | निजी आवश्यकताएं पूरी हो सकें। |
| धैर्य | – | परिणाम पाने तक मेहनत कर सकें। |
| प्रेम | – | दूसरों के लिए उपयोगी बन सकें। |
| शक्ति | – | मुसीबतों का सामना कर सकें। |
| विवेक | – | भूलों का सुधार कर सकें। |
| उदारता | – | औरों में अच्छाइयां देख सकें। |
| विश्वास | – | सोचा गया संकल्प कर सकें। |
| संकल्प | – | बिना रुके लक्ष्य तक पहुंच सकें। |

# सार्थकता की तलाश

★★★

साध्वी कनकश्री

श्रीमद् जयाचार्य पश्चिम रात्रि के समय स्वाध्याय में लीन थे। उन्होंने देखा– आस-पास के गली–मुहल्लों के कुत्ते परस्पर लड़ रहे हैं। भौंक रहे हैं। उनका कवि-मानस जागा। एक पद्य के माध्यम से अनुभूति के बोल फूट पड़े–

**'नहीं ज्ञान अरु ध्यान, काम-काज पिण को नहीं।**
**ते कुक्कुर सम जाण, फिरै-चरै कलहो करै।।'**

जिस व्यक्ति का जीवन निरुद्देश्य होता है, जिसके सामने न ज्ञान का लक्ष्य होता है, न ध्यान का। जिसकी न कर्मजा शक्ति स्फुरित है और न श्रम की मनोवृत्ति विकसित, उसका जीवन अधिक मूल्यवान नहीं हो सकता। विशेष लक्ष्य निर्धारण के अभाव में उसकी प्रवृत्ति या जीवन-यापन की शैली कुत्ते की भांति मात्र त्रिआयामी रह जाती है। वे तीन आयाम हैं–बिना ही प्रयोजन इधर-उधर घूमते रहना, दिन भर खाते रहना और बचे हुए समय को लड़ाई-झगड़े में बिता देना।

लक्ष्यहीन जीवन वास्तव में बड़ा दयनीय होता है। जीना एक बात है और उसे किसी विशेष लक्ष्य के साथ जोड़कर सार्थकता प्रदान करना दूसरी बात है।

मनुष्य रोता हुआ जनमता है, शिकायतें करते हुआ जीता है और निराशा के मलबे से दबकर मर जाता है। इतनी-सी है उसकी जीवन-यात्रा, किन्तु महान् उद्देश्य के लिए समर्पित जीवन की सुवास अद्भुत होती है। उससे परम्परा का आर और पार प्रकाशित होता है।

लक्ष्यों के संकट से गुजरते हुए इस जमाने में सबसे अधिक हानि जीवनमूल्यों की हुई है। पश्चिमी दुनिया की यह सबसे बड़ी समस्या है–'लाइफ इज मीनिंगलेस' जीवन अर्थहीन है। इसका कारण है, वर्तमान के सामाजिक मूल्य अर्निंग–अर्थार्जन और लर्निंग–शिक्षा पर जितना बल देते हैं, लीविंग–जीवन की शैली को वे उतना ही अधिक उपेक्षित कर रहे हैं। इसीलिए आज मानव मन टूटा हुआ तथा निराशा और हताशा से घिरा हुआ है। भारत के प्राचीन चिन्तकों ने जीवन की अतल गहराइयों में जाकर सदा सार्थकता को तलाशा है। उन्होंने जीवन को अर्थहीन नहीं, प्रत्युत परम अर्थ की सिद्धि का हेतु माना है और उसे समग्रता से आलेखा है। जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा–

**शान्तं तुष्टं पवित्रं च, सानंदमिति तत्त्वतः।**
**जीवनं जीवनं प्राहुः, भारतीय सुसंस्कृतौ।।**

भारतीय संस्कृति में वह जीवन सार्थक और समृद्ध माना गया है, जिसमें शांति, संतोष, पवित्रता और आनंद–इस चतुष्टयी की संतुलित समन्विति हो।

## शांति का पथ है संयम

आज मनुष्य को भौतिक समृद्धि और सुख-सुविधा की सामग्री इतनी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, जितनी इतिहास में उसे कभी नहीं मिली। फिर भी आज का मनुष्य जितना अशान्त और बेचैन है, उतना अशान्त और बेचैन वह पिछली शताब्दियों में शायद ही रहा हो।

'तन के सौ सुख सुविधाओं में, मेरा मन वनवास दिया–सा' अथवा 'पानी में मीन पियासी।' कम्प्यूटर और रोबोट युग के सुनहरे सपनों में जीने वाले आज के मनुष्य की ठीक यही स्थिति है। इसलिए आज वह सबसे अधिक आतुर है शांति पाने के लिए। वह उस दिशा में भागा जा रहा है। धन से, पद से, सत्ता से अथवा प्रतिष्ठा से जैसे भी हो, उसे खरीदना चाहता है। लेकिन सचाई यह है–

* धन से दवा खरीदी जा सकती है, स्वास्थ्य नहीं।
* धन से मकान खरीदा जा सकता है, आराम नहीं।
* धन से किताबें खरीदी जा सकती हैं, ज्ञान नहीं।
* धन से सब कुछ खरीदा जा सकता है, पर शांति नहीं।

सत्ता, पद और प्रतिष्ठा भी भटकाने वाले तत्त्व हैं। उनसे शांति को उपलब्ध नहीं हो सकते हैं। हम देखते हैं, ऐश्वर्य और सत्ता के शिखर पर भी व्यक्ति मानसिक समस्याओं से घिर रहा है। इसीलिए अध्यात्म के आचार्यों ने गाया–शांति का सही और निर्विकल्प उपाय है–संयम।

प्रख्यात इतिहासकार 'विलडूरां' ने अपनी पुस्तक 'स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन' में लिखा है–'सम रूल्स आर नेसेसरी फोर द गेम ऑफ लाइफ' जीवन के खेल के लिए कुछ नियम जरूरी होते हैं। बात बिल्कुल ठीक है। जबकि गुल्ली-डंडा, कबड्डी, क्रिकेट जैसे छोटे-मोटे खेलों के भी अपने नियम होते हैं तो जीवन तो एक बहुत बड़ा खेल है। बिना नियम अथवा संयम से वह कैसे खेला जा सकता है? भारतीय संस्कृति में संयमशून्य जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रदत्त घोष 'संयमः खलु जीवनम्' इसी ओर संकेत कर रहा है।

आज संयम जैसा तत्त्व बड़ी तेजी से लुप्त होता जा रहा है। इसका कारण है सुविधावादी दृष्टिकोण। सुविधावादी होना कमजोरी की निशानी है। समाज में पनपता हुआ नैतिक मूल्यों का संकट इसी मनोवृत्ति की देन है। आज के युवक ने नौकरी और गाड़ी जैसे उथले-लक्ष्य निर्धारित कर लिए हैं। अपनी परिकल्पित मंजिल तक पहुंचने के लिए उसके सामने काफी शॉर्टकट रास्ते भी खुले हैं। वह सिफारिश, घूस, बेईमानी जैसे घटिया तरीकों से भी वहां तक जल्दी पहुंचना चाहता है। जिन तौर तरीकों से एक बार सफलता मिल जाती है तो आगे चलकर वह उसकी जीवन शैली और कार्य पद्धति बन जाती है। यहीं से जीवन-मूल्यों में गिरावट का क्रम चालू हो जाता है। यहीं से प्रामाणिकता, निष्ठा और संयम की सार्थकता समाप्त हो जाती है। किसी भी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र ने जितनी-जितनी संयम की उपेक्षा की है, वह उतना ही अधिक अशांत और विक्षुब्ध हुआ है। असंयम का परिणाम है–धृति, सहिष्णुता और प्रतिभा का लोप। संयम से ऊर्जा का विकास होता है। आभा–मंडल तेजस्वी बनता है। सहिष्णुता की शक्ति बढ़ती है। सहिष्णु व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में शांत और संतुलित रह सकता है। केवल शांत चित्त से ही व्यक्ति उचित कार्य, उचित समय पर, उचित तरीकों से कर सकता है। शांत-चित्तता उसके लिए सफलता की कुंजी बन जाती है। शांति को प्राप्त करने का एक सक्षम उपाय है–संयम। संयम के अभाव में शांति की आशा करना व्यर्थ है।

## संतोष मिलता है नियंत्रण से

जीवन का मूल्य दो दृष्टियों से आंका जाता है। एक पदार्थ दृष्टि और दूसरी है यथार्थ दृष्टि। पदार्थ दृष्टि जितनी पुष्ट होती है, व्यक्ति उतना ही असंतुष्ट होता है। असंतोष दरिद्रता है। संतोष संपन्नता है।

'सर्वत्र संपदस्तस्य, संतुष्टं यस्य मानसम्।' संतुष्ट मन पदार्थ का गुलाम नहीं होता, मालिक होता है। उसकी यथार्थ दृष्टि जाग जाती है। ऐसी स्थिति में पदार्थ उसके लिए उपभोग की नहीं, उपयोग की वस्तु मात्र रह जाती है। यही है उसकी स्वतंत्रता। इस स्वतंत्रता में जो संतोष उद्भूत होता है वह कितना आनन्ददायी होता है, कल्पना नहीं की जा सकती।

दक्षिण ध्रुवीय प्रदेशों की 'एस्किमो' जाति के लोगों की एक विलक्षणता है कि वे अपनी प्रिय से प्रिय और कीमती से कीमती वस्तुएं बड़ी खुशी के साथ दूसरों को दे देते हैं। उनका मानना है कि हम वस्तु के गुलाम नहीं, मालिक हैं। हमारी मिल्कीयत इसी में है कि जब कभी उसे किसी को दे देते हैं। यदि हम पदार्थ के साथ चिपक जाएंगे, उससे प्रतिबंधित हो जाएंगे तो हम उसके गुलाम हो जाएंगे। वस्तुतः यही है भारतीय संस्कृति का संतोष-तत्त्व, जिसने अकिंचनता में भी चक्रवर्तित्व का बोध कराया था।

## पवित्रता के लिए अपेक्षित है चित्त–शुद्धि

जीवन के उपवन को श्री-संपन्न बनाने वाला तीसरा प्राणवान पुष्प है–पवित्रता। मिथ्या दृष्टिकोण, इच्छाओं का विस्तार, प्रमाद, आवेग-संवेग और दुष्प्रवृत्तियां–इनके कारण चित्त–चेतना पर निरन्तर मैल जमता रहता है। चित्त की मलिनता व्यक्तित्व को विकृत बनाती है। उसमें ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, क्रूरता, प्रवंचना, कामना और वासना के विषांकुर पनपने लगते हैं। स्नेह, सद्भाव, सौजन्य और सहिष्णुता का स्रोत सूखने लग जाता है। ऐसी स्थिति विकृत मानसिकता और रुग्ण पीढ़ी को जन्म देती है, जो किसी भी समाज या राष्ट्र के लिए शुभ नहीं हो सकती, अतः स्वस्थ-समाज की संरचना के लिए पवित्रता की सुगन्ध अपेक्षित है। उसके लिए चित्त शुद्धि के उपायों पर ध्यान देना आवश्यक है। सद्विचार, सत्संग और सत्साहित्य का वाचन ये चित्त शुद्धि के सहज निमित्त बनते हैं। प्रेक्षाध्यान के अंतर्गत श्वास प्रेक्षा, तथा शांति केन्द्र और दर्शन केन्द्र पर प्रकाशी-श्वेत रंग का ध्यान करने से भी चैतसिक निर्मलता को विकसित किया जा सकता है।

## आनन्द का आधार है स्वास्थ्य

स्वास्थ्य के बिना आनन्द उपलब्ध नहीं हो सकता। यहां स्वास्थ्य से तात्पर्य मात्र शरीर की निरोगता ही नहीं है, प्रत्युत इसका अभिप्रेत है–शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वस्थता। हमारे शरीर, मन और भावनातंत्र एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। मन और भावनातंत्र की विकृति शरीर को रुग्ण बनाती है और शरीर की रुग्णता मन और भावनातंत्र को प्रभावित करती है। अतः चैतसिक प्रसन्नता या आनन्द की उपलब्धि के लिए पहली अपेक्षा है कि शरीर, मन और भावसंस्थान स्वस्थ हों। एक बात विशेष ज्ञातव्य है, जिसने अपने मन को साध लिया, भावना–तंत्र को सक्षम बना लिया, वह व्यक्ति शरीर से रुग्ण होकर भी जीवन का वास्तविक आनन्द लूट सकता है, क्योंकि उसे दुःख में से सुख निकालने की कला हस्तगत हो जाती है।

बादशाह ने बीरबल से कहा–'आज मुझे बहुत बुरा स्वप्न आया है। मैंने देखा, हम दोनों जंगल में से होकर गुजर रहे हैं। अचानक दोनों गड्ढे में गिर गए। जिस गड्ढे में मैं गिरा वह अमृत से भरा हुआ था और जिस गड्ढे में तू गिरा वह कीचड़ से भरा हुआ था। बस, एक झटका–सा लगा और मेरी आंख खुल गईं।' बीरबल ने कहा–'जहांपनाह! हमारा भावना सूत्र कितना जुड़ा हुआ है। हमारा चिंतन भी एक है, प्रवृत्ति भी एक है और आश्चर्य की बात यह है कि हम स्वप्न भी देखते हैं तो एक जैसे ही देखते हैं। अन्तर इतना है कि आपकी नींद टूट गई, इसलिए आपने अधूरा स्वप्न

देखा। आपका आदेश हो तो बताऊं।' बादशाह की स्वीकृति पाकर बीरबल ने कहा–हम दोनों क्रमशः अमृत और कीचड़ के गड्ढे में गिर गए, वहां तक तो ठीक है। मैंने आगे देखा, किसी तरह हम बाहर निकल गए हैं और फिर आप मुझे चाट रहे हैं और मैं आपको चाट रहा हूं। बीरबल का आशय यह था कि मैं गिरा चाहे कीचड़ में था, पर मैंने स्वाद अमृत का लिया है। इसके विपरीत आप चाहे अमृत के कुंड में ही गिरे हों पर आपने अमृत का स्वाद लेना नहीं जाना। आपने स्वाद तो आखिर कीचड़ का ही लिया।

यह है स्वस्थ मन की पहचान। वह विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी रसात्मकता और मधुरिमा को नहीं खोता। वह विष में से अमृत निकाल लेता है, दुःख में से सुख निकाल लेता है, और व्यर्थ को अर्थ दे देता है। पश्चिम और पूरब की विचारधाराओं में यही फर्क है कि एक जहां अर्थ को व्यर्थ साबित कर रही हैं, वहां दूसरी व्यर्थ में भी विशेष अर्थ तलाश लेती है। यही है भारतीय चिंतन का मर्म–

'जो दे सके व्यर्थ को अर्थ, वही सिद्ध, वही समर्थ।।'

❑

## अनुभूति का मौक्ष

ऊपर या कहीं मौक्ष है - यह ज्ञात नहीं।
ज्ञात है - जिसका मन पूर्णतया शान्त है,
उसके लिए मौक्ष है अभी, यहीं।

अभी नहीं, मृत्यु के बाद मौक्ष मिलता है -
ऐसे मौक्ष का यकीन करने में कोई फायदा नहीं।
मृत्यु के बाद मौक्ष मिलेगा ही -
इसकी जिम्मेदारी ओढनेवाला भी कोई लगता नहीं।
उस मौक्ष में शान्ति है या क्या है? -
इसका भी पता नहीं।
शान्ति अभी है, तो मौक्ष अभी है -
इस ज्वलन्त सत्य को झुठलाया जा सकता नहीं।

कल्पित मौक्ष की रसीली चर्चा में न जाएं,
साक्षी भाव की साधना में रम जाएं।
अशान्ति की जंजीरें टूट पड़ेंगी।
अनुभूति का मौक्ष पा जाओगे अभी यहीं।

❊ 'परम त्याग के पथ पर' पुस्तक से-

# जैन दर्शन में तनाव और तनाव से मुक्ति

*प्रोफेसर सागरमल जैन*

वर्तमान युग में मानव की जो त्रासदियां हैं, उनमें तनाव की समस्या प्रमुख है। आज विश्व का प्रत्येक मानव तनावों से ग्रस्त है। तनाव दुःख रूप है और प्रत्येक व्यक्ति दुःखों से मुक्त रहना चाहता है। फिर भी स्थिति यह है कि सभी व्यक्ति किसी न किसी रूप से आज तनावों से ग्रस्त हैं। तनाव मूलतः एक मनोदैहिक स्थिति है जो दुःख रूप है। जैन परम्परा में प्राचीन काल में यह दोहा विशेष रूप से प्रसिद्ध रहा है–

**धन बिना निर्धन दुःखी और तृष्णावश धनवान।**
**कोई न सुखी संसार में सारो जग लियो छान।।**

तात्पर्य यह है कि धनी या निर्धन, सभी व्यक्ति तनावों से ग्रस्त हैं। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि आज कोई भी व्यक्ति तनावों में जीना नहीं चाहता है, फिर भी सभी अपनी मानसिकता के कारण तनावों से ग्रस्त बने हुए हैं।

प्रत्येक मनुष्य का ध्येय सुख और शांति की प्राप्ति है, किन्तु दुःख को उपशान्त करने के लिए उसके सारे प्रयत्न कहीं न कहीं उसे तनावग्रस्त ही बना रहे हैं। तथ्य यह है कि दुःख मुक्ति और सुख के लिए प्रयत्नशीलता भी किसी न किसी रूप में मनुष्य को तनावग्रस्त ही बना रही है, क्योंकि जब तक मनुष्य में इच्छा, आकांक्षा, अपेक्षा और चाह बनी हुई है, तब तक तनावों का जन्म तो होना ही है। कामनाएं तनावों को जन्म देती हैं, और आज विश्व में प्रत्येक व्यक्ति कामनाओं से ग्रस्त बना हुआ है। वस्तुतः कामनाओं की पूर्ति की चाह के कारण वह किसी न किसी रूप में तनावग्रस्त बना ही रहता है। यद्यपि तनावों के कारण मनोदैहिक अर्थात् भौतिक और मानसिक दोनों ही होते हैं, किन्तु उनमें मानसिक कारण ही प्रमुख होते हैं। यह सत्य है कि अभाव और इच्छाएं दोनों ही मनुष्य को तनावग्रस्त बनाती हैं, फिर भी मानसिकता के बिना अभाव व्यक्ति को उतना तनावग्रस्त नहीं बनाता है, जितना उसकी आकांक्षाएं, अपेक्षाएं और इच्छाएं बनाती हैं। यद्यपि इस बात को बड़े जोर-शोर से प्रसारित किया जाता है कि अभाव या गरीबी तनाव का एक प्रमुख कारण है, किन्तु संसार में अनेक ऐसे मनुष्य भी हैं, जिनकी इच्छाएं और आकांक्षाएं इतनी तीव्र नहीं होती हैं, वे स्वभावतः शांत और संतोषी होते हैं, और इस कारण से वे तनाव ग्रस्त भी नहीं बनते हैं। वस्तुतः तनाव का मूलभूत कारण वस्तु का अभाव नहीं, किन्तु वस्तु अर्थात् जागतिक विषयों की अधिक मात्रा में प्राप्ति की गहरी आकांक्षा है। कहा भी जाता है–संतोषी सदा सुखी। इस संबंध में एक अन्य दोहा भी प्रसिद्ध है–

**गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतनधन खान।**
**जब आवे संतोष धन, सब धन धूलि समान।।**

वस्तुतः तनावों से मुक्ति के लिए व्यक्ति की इच्छा, आकांक्षा या तृष्णा से मुक्ति आवश्यक है। तनाव का मूल कारण वस्तुओं का अभाव या स्वास्थ्य सम्बन्धी विकृतियां ही नहीं होती हैं। विश्व में ऐसे अनेक विपन्न व्यक्ति देखे जाते हैं, जो गरीबी और बीमारी के बावजूद भी प्रसन्नचित्त रहते हैं। व्यक्ति की दुष्पूर-इच्छाएं और आकांक्षाएं ही उसमें तनावों को जन्म देती हैं। कहा भी गया है कि–

**चाह गई चिंता मिटी, और मनुवा भया बेपरवाह।**
**जिसको कछु न चाहिए वह शहंशाहों का भी शहंशाह।।**

## तनाव के कारण

वस्तुतः व्यक्ति जब अपने तनावों के कारणों का विश्लेषण करता है, तो उसे उन कारणों की सत्यता का बोध हो जाता है, क्योंकि तनावों के पीछे व्यक्ति की गहरी आसक्ति या तृष्णा छुपी हुई होती है। वीतराग साधक इसलिए तनावों से मुक्त होता है कि उसकी कोई आकांक्षा या अपेक्षा ही नहीं होती है। आज विश्व में जो अशांति और दुःख हैं, वे सब किसी न किसी रूप में तृष्णा या आसक्तिजन्य हैं। संग्रह की आकांक्षा, स्वामित्व की अपेक्षा और इच्छाओं की असीमितता ही आज मानव जाति के तनाव ग्रस्त होने में मूल कारण हैं। वर्तमान युग में हमें आवश्यकता और आकांक्षाओं का अन्तर समझना होगा। आवश्यकता की पूर्ति संभव है, किन्तु आकांक्षा या इच्छाओं की पूर्ति संभव नहीं है। मिथ्या स्वामित्व की अवधारणा और दुष्पूर आकांक्षा या तृष्णा ही तनावों का मौलिक कारण है। इसलिए भारतीय संस्कृति ने आसक्ति, ममत्ववृत्ति, तृष्णा या रागात्मकता से ऊपर उठने का सन्देश दिया है। विश्व में आज जो युद्ध की विभीषिका मंडरा रही है, वह वस्तुतः जीवन जीने के साधनों की कमी के कारण नहीं हैं अपितु मनुष्य की संग्रहवृत्ति, अधिकारवृत्ति और पारस्परिक अविश्वासजन्य भय के कारण है।

## तनाव-मुक्ति

भारतीय धर्मों और विशेष रूप से जैन धर्म का यह संदेश रहा है कि व्यक्ति तनावों से मुक्त होकर समत्व या समभाव में जीने का प्रयत्न करे। गीता में इसे ही समत्व योग की साधना कहा गया है। समत्व योग अनासक्त, वीतराग या वीत-तृष्ण होने की कला सिखाता है। आज विश्व में धर्म के नाम पर बहुत कुछ आडम्बर और मिथ्या धारणाएं बनी हुई हैं। कर्मकाण्डों और भौतिक उपलब्धियों को ही धर्म मान लिया गया है। धर्म भौतिक उपलब्धियों का साधन नहीं है। धर्म आत्म-शोधन या चित्त–वृत्ति शोधन की प्रक्रिया है। वह आत्मोपलब्धि है, आध्यात्मिक है। वस्तुतः समत्व की साधना ही अर्थात् अनासक्त, वीतराग और वीत-तृष्ण होना ही धर्म है। मेरी दृष्टि में वे सभी बातें जो मुझको, मेरे परिवार को अथवा समाज और राष्ट्र को तनावग्रस्त बनाती हैं, वे सभी अधर्म हैं, पाप हैं। वस्तुतः जो व्यक्ति को, परिवार को, समाज को या राष्ट्र को तनाव मुक्त बनाता है, वही सच्चा धर्म है, सच्ची साधना है।

जहां तक तनाव के कारण और तनाव मुक्ति के प्रयासों का प्रश्न है, वहां तक सभी धर्म और संस्कृतियां एकमत हैं। विश्व में अभय और शांति की स्थापना के लिए हमें मानव को तनावमुक्त रहने की कला सिखानी होगी, क्योंकि तनाव-मुक्ति का प्रयत्न ही धर्म है, साधना है। आज मानव जाति को तनाव-मुक्ति की दिशा में ले जाने के लिए सार्थक प्रयत्नों की आवश्यकता है। यद्यपि किसी सीमा तक आर्थिक-विपन्नता, शारीरिक अस्वस्थता, परिवेश की विद्रूपता तनाव का कारण होती है, किन्तु मुख्य रूप से जो तनावों का मूलभूत कारण है, वह व्यक्ति में रही हुई संचय या परिग्रह की वृत्ति ही है। इसलिए भगवान महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र में स्पष्ट रूप से कहा था कि 'वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते' अर्थात् आसक्त-चित्त धन के द्वारा त्राण अर्थात् शांति को प्राप्त नहीं होता है। संग्रह की वृत्ति अशांति और तनाव की हेतु ही है।

इससे उत्पन्न लोभजन्य शोषण की वृत्ति व्यक्तियों और समाज के मध्य तनाव को ही उत्पन्न करती है, अविश्वास और भय को जन्म देती है। उससे समाज दो वर्गों में बंट जाता है–शोषक और शोषित वर्ग। ध्यान रहे गरीब व्यक्ति में भी ईर्ष्या का भाव या धन की चाह ही तनाव उत्पन्न होने का मूल कारण है। तनाव व्यक्ति की विपन्नता के कारण उत्पन्न नहीं होते हैं, अपितु उसकी संग्रह-वृत्ति या परिग्रह की वृत्ति के कारण उत्पन्न होते हैं। पारिवारिक-जीवन में भी असंतुलन और तनाव-ग्रस्तता का मुख्य कारण भी कहीं न कहीं व्यक्ति की दूसरों पर अधिकार भावना के कारण होता है। धार्मिक जीवन में तनाव उत्पन्न होने का कारण भी कहीं न कहीं धर्म की सम्यग् समझ का अभाव होता है। अपने धर्म की सत्यता के प्रति अत्यधिक मोह और अन्य धर्मों के प्रति हीनभावना ही धार्मिक जीवन में तनावों को उत्पन्न करती है। वस्तुतः यहां भी हमारी चित्तवृत्तियां ही तनावों को जन्म देती हैं। चित्त वृत्ति का संयमन और मन को विकल्पों से मुक्त रखने के प्रयत्न ही व्यक्ति को तनावों से मुक्त बना सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने तनाव का एक कारण शरीर या इन्द्रियों की मांगों को नकारना भी माना है। वस्तुतः तनाव का कारण इन्द्रियों का बाह्य जगत में स्थित अपने विषयों से सम्पर्क नहीं है। तनावों का कारण है–व्यक्ति की भोगाकांक्षा या वस्तु के प्रति ममत्व का आरोपण या उस पर स्वामित्व की भावना। वस्तुतः यदि संसार में रहकर भी व्यक्ति की जीवन-दृष्टि अनासक्त बने तो वह तनावमुक्त रह सकता है। कहा भी है–

**बाजार से निकला हूं, मगर खरीदार नहीं हूं।**
**दुनिया में हूं, मगर दुनिया का तलबगार नहीं हूं।।**

हमें यह भी देखना होगा कि व्यक्ति तनावों से मुक्त कैसे हो सकता है? इसके लिए अनासक्ति और अभय की साधना आवश्यक है। जैन दर्शन में तनाव-मुक्ति की प्रक्रिया को समझाते हुए इन्द्रिय-विजय, कषाय-विजय, लेश्या परिवर्तन अर्थात् चित्त–वृत्ति का सम्यग् दिशा में नियोजन आवश्यक माना गया है। जब तक व्यक्ति इनके माध्यम से तनाव-मुक्त नहीं होगा, तब तक वह समाज को और मानव जाति को भी तनाव मुक्त नहीं बना सकेगा। आचारांग सूत्र में कहा गया है कि जो व्यक्ति स्वयं तनावग्रस्त होता है वही दूसरों को भी तनावग्रस्त बनाता है। अतः देश और समाज को तनाव-मुक्त बनाने के लिए पहले व्यक्ति को तनाव-मुक्त जीवन जीने की कला सीखनी होगी, जो अनासक्त जीवन शैली के द्वारा ही प्राप्त होगी। ❑

### * महल का सिर्फ एक दरवाजा *

एक सम्राट ने एक महल बनवाया। महल इतना सुरक्षित था कि किसी दुश्मन के आने की संभावना नहीं थी। महल का सिर्फ एक दरवाजा, उस पर हजारों नंगी तलवारों का पहरा। पड़ोसी राजा सुरक्षित महल देखने आया। बहुत प्रभावित हुआ, विदा के समय उसने राजा को धन्यवाद देते समय बताया कि मैं भी वहां जाकर ऐसा ही महल बनाऊंगा जो इतना सुरक्षित हो। पास में बैठा एक बूढ़ा भिखारी उनकी इस बात पर हंस पड़ा। उसने कहा–महल बनवाने में एक भूल रह गई। एक दरवाजा खुला है जिसमें दुश्मन प्रवेश कर सकता है। आप भीतर हो जाएं, दरवाजे को चिनवा दें, फिर आप बिलकुल सुरक्षित हैं। सम्राट ने कहा–पागल! फिर तो यह महल नहीं, कब्र बन जाएगी। उस फकीर ने कहा–राजन! यह महल कब्र तो बन ही गया है, सिर्फ एक दरवाजा बचा है। एक दरवाजा है–दुश्मन घुस सकता है। दुश्मन नहीं तो कम से कम मौत तो दरवाजे से भीतर चली जाएगी।

# आचार्य तुलसी की दृष्टि में विश्व शांति एवं भावी समाज का स्वरूप

–प्रोफेसर बच्छराज दूगड़

अहिंसा का प्रयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सदैव होता आया है। 'सब जीवों को जीवन और सुख प्रिय है। दुःख और मृत्यु अप्रिय है, इसलिए किसी भी प्राणी का वध नहीं करना चाहिए, सताना नहीं चाहिए।' 'जिसको तू मारना चाहता है, वह तू ही है। जिसे तू दबाना चाहता है, वह भी तू ही है'– आदि शाश्वत उद्घोषणाओं के बावजूद विश्व हिंसा की समस्या से ग्रस्त रहा है, शांति की प्यास उसे सदैव रही है। शांति मानव की चिर-प्रतीक्षित आकांक्षा है फिर भी वह अशांत है। हिंसा के पाशविक परिणामों को भोगकर भी वह दिङ्मूढ है। अहिंसा का मार्ग प्रशस्त है पर उस पर श्रद्धा नहीं हो पाती। अशांति से मुक्ति के लिए वह अहिंसा की तरफ कदम बढ़ाता है किन्तु हिंसा का मोहक आकर्षण उसे फिर अपनी ओर खींच लेता है। समृद्ध भी अशांत है और गरीब और जरूरतमंद भी अशांत है!

## अशांति का हेतु

प्रश्न है–अशांति का मूल क्या है? आचार्य तुलसी कहते हैं–'अशांति का कारण है–जीवन की आवश्यकताओं में वृद्धि। आवश्यकताएं बढ़ती हैं, वहां उनकी पूर्ति के लिए आर्थिक लिप्सा बढ़ती है। आर्थिक लिप्सा से शोषण बढ़ता है। शोषण चाहे व्यक्तिगत, जातिगत और राष्ट्रीय कैसा भी हो–उससे संघर्ष और दुर्भावना का जन्म हुए बिना नहीं रहता। सामग्री कम है, आवश्यकताएं अधिक हैं और इससे भी अधिक है संग्रह की भावना। यह समस्या साधनों के विस्तार से नहीं सुलझ सकती। साधनों के विस्तार के साथ-साथ आवश्यकताएं भी बढ़ती जाएंगी। परिणामस्वरूप मनुष्य दिङ्मूढ होकर पथभ्रष्ट हो जाएगा।' सुकरात ने कहा था–'लोग सरल जीवन-पद्धति से संतुष्ट नहीं होंगे। उन्हें वस्त्र, आवास, भोजन, मेज, सोफा जैसे उपस्कर की आवश्यकताओं से आगे बढ़ जाना चाहिए। उसके बाद हमें अपनी सीमाओं को बढ़ाना चाहिए, क्योंकि मूल स्थिति अधिक समय तक नहीं रहती और जो प्रदेश अपने मूल निवासियों का भरण-पोषण करने में काफी था वह अब उसके लिए कम हो जाएगा तब हम अपने पड़ोसियों की जमीन का टुकड़ा हथियाना चाहेंगे। यदि हमारी तरह उनकी भी आवश्यकताएं सीमा पार कर जाए और वे स्वयं धन के असीमित संचय में लग जाएं तो परिणाम होगा–युद्ध।'

आचार्य तुलसी कहते हैं–'व्यक्ति में हीनता की वृत्ति है जिससे वह स्वयं को दूसरों से हीन मानता है। उसमें गर्व की वृत्ति है जिससे वह स्वयं को दूसरों से उच्च मानता है। आग्रह की वृत्ति से दूसरों के अस्तित्व को अस्वीकार करता है। अधिकार वृत्ति से वह दूसरों को अपने अधीन बनाए रखना चाहता है।' भय, पक्षपात, लोभ, वासना–इन वृत्तियों से प्रेरित हो व्यक्ति झूठा, अप्रामाणिक, विलासी व संग्रह लोलुप हो जाता है। हॉब्स ने हिंसा के ये तीन कारण निर्दिष्ट किये हैं–1. प्राप्ति की लालसा, 2. क्षति का भय, 3. मिथ्याभिमान।

मनुष्य हिंसा का पहला प्रयोग कुछ प्राप्ति के लिए करता है। दूसरा प्रयोग प्राप्त हुए की सुरक्षा के लिए और तीसरा प्रयोग वह प्रतिष्ठा के लिए करता है। हिंसा का प्रथम प्रयोग उसे दूसरों का स्वामी

बनाता है। दूसरा प्रयोग स्वामित्व के संरक्षण के लिए होता है, तीसरा प्रयोग दूसरों को यह बताने के लिए होता है कि वह उनका स्वामी है अर्थात् संग्रह, सुरक्षा व प्रतिष्ठा–यह त्रिआयामी चक्र ही मूलत: हिंसा का जिम्मेदार है।

## अशांति निवारण

आचार्य तुलसी के अनुसार अशांति की समस्या के समाधान का सबसे सरल एवं एकमात्र मार्ग आत्मसंयम है। आत्मसंयम के बिना आवश्यकता और साधनों की कमी का संघर्ष काल-कवलित नहीं हो सकता। भौतिक उन्नति के भवन का निर्माण आसक्ति की ईंटों से होता है और जहां आसक्ति है वहां भेद-भाव है, संघर्ष है, दमन है, युद्ध और अशांति है। जहां संयम है वहां अनासक्ति है और अनासक्ति कभी भी प्रतिस्पर्धा, युद्ध और अशांति नहीं लाती।'

समस्याओं के भी कई रूप हैं और उनके निराकरण में भी अभेद नहीं है। व्यक्तिगत समस्याएं यथा जिजीविषा और बुभुक्षा अर्थात् भोग की मनोवृत्ति एवं लिप्सा अर्थात् कुछ पाने की मनोवृत्ति। जब-जब इनकी पूर्ति में कोई बाधा आती है तब-तब संघर्ष प्रारम्भ हो जाते हैं। सामाजिक समस्याओं का मूल अभाव, दबाव, संग्रह (सत्ता व धन) है। इन समस्याओं का समाधान है–समानता व चारित्रिक मानदण्डों की प्रतिष्ठा करना। समानता की प्रतिष्ठा करना धनी वर्ग व सरकार का कार्य है जबकि चारित्रिक मानदण्डों की प्रतिष्ठा करना व्यक्ति व संपूर्ण समाज का कार्य है। सामाजिक चरित्र के कुछ मानदण्ड निम्नलिखित हो सकते हैं, जो समस्याओं के समाधान में सक्षम हैं–

(1) मानवीय समता अर्थात् जातीय विषमता की अस्वीकृति,

(2) मानवीय एकता अर्थात् सामाजिक विषमता की अस्वीकृति,

(3) प्रामाणिकता और, (4) पवित्रता।

अंतरराष्ट्रीय समस्याएं सत्ता को पाने व उसे बनाए रखने, वैचारिक दासता की स्थापना के प्रयत्न व युद्ध के अधिकार पर टिकी हैं। युद्ध के दो पहलू रहे हैं, इसलिए जनता विस्तारवादी मनोवृत्ति से लड़ने वालों और अपनी रक्षा की भावना से लड़ने वालों को एक ही तुला से नहीं तौलती। फिर भी युद्ध अवांछनीय ही है। जो लोग गरीबी, अशांति और अराजकता की स्थिति से लाभ उठाना चाहते हैं वे ही युद्ध का अनुमोदन करते हैं। समाजशास्त्री कार के अनुसार कुछ समाजसेवी युद्ध को पसन्द करते हैं ताकि युद्धोपरांत उन्हें समाजसेवा का अवसर मिल सके। लेकिन सम्पन्नता, शांति और व्यवस्था में विश्वास रखने वाले कभी भी युद्ध नहीं चाहते। युद्ध उनके लिए विवशता है। बर्टेण्ड रसेल की भांति आचार्य तुलसी कहते हैं–'युद्ध से न जाने मानव सभ्यता की कितनी क्षति हुई है। युद्ध में मारे गये व्यक्ति यदि जीवित रहते तो न जाने कितनी कलाओं का जन्म होता। मानव जाति के विशाल बहुमत ने अब तक कैसे युद्ध को सहन कर लिया।'

वे युद्ध के पारम्परिक कारण स्त्री, धन व भूमि को स्वीकार करते हैं। राम-रावण के बीच हुआ संग्राम स्त्री के कारण था। कोणिक और चेटक के बीच संग्राम का कारण सम्पत्ति था जबकि महाभारत का युद्ध भूमि के लिए लड़ा गया था। यद्यपि आज प्राय: स्त्री के कारण युद्ध नहीं होते लेकिन धन व भूमि के कारण आज भी युद्ध होते हैं। विज्ञान की प्रगति से भोग के साधन बढ़े हैं परिणामस्वरूप धन व भूमि की छीना–झपटी व हरण हो रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति तक यूरोपीय राष्ट्र साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद से पीड़ित रहे। बड़े-बड़े साम्राज्यों की स्थापना से उन्हें आनन्द आता था, जिसके लिए वे सैकड़ों वर्ष लड़ते रहे। इसी

उपनिवेशवाद ने यूरोप में हिटलर को जन्म दिया। हिटलर आठ करोड़ जर्मनों के लिए उपनिवेश चाहता था। प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी के साथ अन्याय के प्रतिशोध स्वरूप संपूर्ण विश्व मात्र भूमि के लिए द्वितीय महायुद्ध की ज्वाला का शिकार बन गया।

आचार्य तुलसी कहते हैं–'अपनी जाति और अपने देश के प्रति एकांगी दृष्टिकोण राग है और दूसरी जातियों व देश के प्रति उदासीनता द्वेष है। केवल अपनी ही उन्नति और सत्ता की सोचने एवं दूसरों के पीड़न, त्रास और शोषण का जरा भी खयाल न रखने से ही आज युद्ध का ताण्डव है।' युद्ध चाहे कैसा ही हो, वह हिंसा का परिणाम है। उसे अहिंसा की संज्ञा नहीं दी जा सकती, फिर भी उसमें अहिंसा के लिए पर्याप्त स्थान है। जैसे आक्रांता न बनें, निरपराध को न मारें, नागरिकों पर आक्रमण न करें, अपाहिजों के प्रति क्रूर न बनें। इस प्रकार वे युद्धकालीन मानवाधिकारों की चर्चा करते हैं।

आचार्य तुलसी मानते हैं–अशांति और शांति का उपादान मन ही है। इसलिए मन को संयमित करके ही संघर्ष को समाप्त किया जा सकता है। संयम के अभाव में विकसित राष्ट्र भी अशांत है। जीवन की आवश्यक वस्तुएं, धन-समृद्धि आदि भी शांति के लिए पर्याप्त नहीं हैं, वे केवल जीने के लिए पर्याप्त हो सकती हैं। हिंसा और अहिंसा का स्वरूप भी यहां स्पष्ट हो जाता है। जीना मनुष्य जीवन का सार नहीं। उसका सार है–शांति का अनुभव करना। गाल्टुंग ने कहा है–शांति केवल व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, प्रकृति और संस्कृति की ही नहीं होती वरन् शांति सभी क्षेत्रों में अनुभव भी होनी चाहिए।

आचार्य तुलसी के अनुसार शांति के अनुभव का एकमात्र मार्ग है–मैत्री। प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र यह समझे कि किसी भी दृष्टि से दूसरों पर प्रभुत्व, अधिकार और सत्ता स्थापित करने से न कभी शांति हुई है और न कभी होगी। 'हणन्त वा णुजाणाई वेरं वड्ढई अप्पणो' वैर से वैर की शांति नहीं होती। अवैर से ही वैर जीता जाता है। प्राणीमात्र के साथ मेरी मैत्री हो, किसी के साथ मेरा विरोध नहीं–यही भगवान महावीर का दृष्टिकोण था। वस्तुतः मनुष्य मनुष्य का शत्रु नहीं होता। मनुष्य ही क्यों, प्राणीमात्र को ही मित्र समझना चाहिए। 'अत्तसमे मनिज्ज, छप्पिकाएं' जीवनमात्र को आत्मतुला मानना चाहिए।

## भावी समाज का आधार

नवनिर्माण आज के युग की मांग है। निर्माण कैसा हो? गणाधिपति तुलसी कहते हैं–'सभी समाज को समृद्ध, सुखी और समस्थितिक बनाना चाहते हैं पर सुख व समृद्धि के स्वरूप को जानना आवश्यक है। जिस समाज का आधार हिंसा और भौतिक लालसामय जीवन होता है, वह कभी भी साम्य स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकता तथा पर-नियंत्रण, पर-अधिकार-हरण, दमन व साम्राज्य-विस्तार की भावना से बच नहीं सकता।' अविकसित राष्ट्रों के सामने भी यही प्रश्न है। वे उस दोराहे पर खड़े हैं जहां उन्हें अपने विकास की दिशाएं तय करनी हैं तथा गरीबी मुक्त समाज का आदर्श लिए नये समाज का निर्माण करना है। यदि वे विकसित राष्ट्रों के समान समृद्ध होना चाहते हैं तो यह जान लेना आवश्यक होगा कि उन्हें ऐसे विकास के नाम पर अशांति, टूटते परिवार, ढहते नीड़, अकेलापन, स्वच्छन्द यौनाचार तथा नशे की प्रवृत्ति मिलेगी तथा इस विकास से गरीब और अमीर के बीच की खाई और अधिक चौड़ी होगी। निश्चित ही ऐसा विकास न तो वांछनीय है और न ही व्यवहार्य। आचार्य तुलसी कहते हैं–'सच यह है कि भौतिक पदार्थों के बिना जीवन का निर्वाह नहीं होता पर जब तक आवश्यकताओं का सीमाकरण नहीं होगा, गरीबी

मुक्त समाज के निर्माण का स्वप्न साकार नहीं होगा। जिस आवश्यकता से दूसरे का अधिकार छीना जाता है वह आवश्यकता नहीं, अनधिकार चेष्टा है। अपरिग्रह व अहिंसा की भित्ति पर अवस्थित समाज ही चिर समृद्ध और चिरसुखी रह सकता है और ऐसा समाज ही साम्य अवस्था को प्राप्त कर सकता है। ऐसे समाज की सार्थकता निम्न तथ्यों पर निर्भर करेगी–

● आवश्यकताओं की पूर्ति, ● विकास के समान अवसर, ● संसाधनों का समान व समुचित बंटवारा, ● साधनों की शुद्धता, ● पारस्परिक सम्बन्ध स्वार्थ व शोषण पर आधारित न हो, ● वैज्ञानिक आविष्कार का प्रयोग नियंत्रित हो, ● आवश्यकता से अधिक संचय न हो तथा स्पर्धा, ईर्ष्या, सत्ता प्राप्ति व दूसरों की सम्पत्ति, स्वत्व को हड़पने की कोशिश न हो, ● दुर्बल, दलित व अन्य जाति, वर्ण व देश के विरुद्ध भेद-भाव न हो।

## सुधार का केन्द्र–व्यक्ति या समाज

कुछ चिंतक व्यक्तिगत उन्नति से समष्टि की उन्नति में विश्वास करते हैं तो कई समष्टिगत सुधार से व्यक्ति सुधार की बात करते हैं। ये दोनों ही दृष्टिकोण एकांगी हैं। आचार्यश्री तुलसी द्वारा निर्दिष्ट सुधार का मार्ग बहु-आयामी है जिसमें व्यक्ति सुधार व समाज सुधार दोनों एक साथ स्वीकृत हैं। एक लक्ष्य व्यक्ति सुधार है तो दूसरा लक्ष्य समष्टि सुधार।

*व्यक्तिगत सुधार हृदय परिवर्तन द्वारा होता है। ऐसे परिवर्तित हृदय वाले व्यक्ति का मन मैत्री व अहिंसा* के प्रकाश से भरा हुआ हो। सत्य के प्रति उसके मन में इतनी गहरी निष्ठा हो कि कठिन से कठिन परिस्थिति में भी उसका मन दूसरा विकल्प न खोजे। उसका जीवन व्यवहार और व्यवसाय प्रामाणिकता की कसौटी पर खरा उतरे। उसका साध्य पवित्र हो, भ्रष्टाचार व व्यभिचार की छाया भी उस पर न पड़े।

अतिभाव और अभाव की स्थिति मनुष्य के सुख का अपहरण करती हैं। अतिभाव मनुष्य को विलासी बनाता है तथा अभाव उसे क्रूर। इन दोनों अतियों से मुक्त समभाव के धरातल का निर्माण कर सके तभी व्यक्ति सुधार की अर्थवत्ता होगी।

समाज सुधार व्यवस्था परिवर्तन पूर्वक होता है। समाज अस्तित्व के तीन आधार हैं–

- कामैषणा अर्थात् काम की इच्छा,
- वित्तैषणा अर्थात् अर्थ की इच्छा,
- सुत्तैषणा अर्थात् संतान की इच्छा।

कौटिल्य के अनुसार समाज की नींव में अर्थ ही प्रधान है। व्यवस्था और काम–दोनों का मूल अर्थ ही है। आर्थिक विषमता ही हिंसा, विद्रोह, अनैतिकता, तनाव, आतंक आदि सामाजिक समस्याओं को उभारती हैं। आज हिंसा के लिए अर्थ नहीं, अर्थ के लिए हिंसा है। अतः अर्थ संग्रह की समस्या को सुलझाये बिना हिंसा की समस्या नहीं सुलझ सकती। आचार्यश्री तुलसी अधिक उत्पादन व समुचित वितरण के स्थान पर विसर्जन और अहिंसा के विकास द्वारा इस समस्या को सुलझाने की बात करते हैं।

अतः चाहे व्यक्ति सुधार हो या फिर समाज सुधार–दोनों का आधार संयम ही होगा। 'संयम प्रधान व्यक्ति और समाज ही अजेय होता है।'

'राजनीति व्यवस्था देती है और अणुव्रत हृदय परिवर्तन। केवल अणुव्रत से समाज की व्यवस्था संभव नहीं और कोरी व्यवस्था से स्वतंत्रता व हृदय परिवर्तन संभव नहीं। स्वतंत्रता और व्यवस्था दोनों का योग ही समाज में सौष्ठव का विकास करेगा।'

## विश्व शांति का मार्ग

यह यथार्थ है-अहिंसा जीवन का आलोक है। स्व में सत्-चित् और आनन्द की अनुभूति ही अहिंसा है। दूसरों के सत-चित् और आनन्द का अपहरण हिंसा है। मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा स्वोन्नयन की ओर प्रवृत्त न होकर परोन्नयन की ओर प्रस्तुत होती है। पर-स्व के स्वीकरण की यही वृत्ति हिंसा का मूल है।

जीवन-निर्वाह के साधनों का केन्द्रीकरण बढ़ा, फलतः शोषण बढ़ा, हिंसा बढ़ी। पदार्थों का विस्तार हुआ, फलतः परिभोग बढ़ा, लालसाएं बढ़ी। पाशविक शक्ति का विकास हुआ, फलतः युद्ध व अशांति बढ़ी। अतएव विश्व शांति के लिए अपेक्षित है–

1. युद्ध न हो, 2. लालसाएं सीमित हों, 3. शोषण न रहे।

राष्ट्र उन्नति के लिए केन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता है, जीवन स्तर ऊंचा उठाने के लिए परिभोग और शक्ति संतुलन की पाशविक शक्ति को उत्तेजन मिलता है–इस महामारी की समाप्ति के लिए संग्रह व शोषण की भावना खत्म करनी होगी तभी प्रेम व मैत्री का मार्ग प्रशस्त होगा।

विश्व शांति और व्यक्ति की शांति अलग-अलग नहीं है। गाल्टुंग कहते हैं–'शांति अविभाज्य है।' अशांति का मूल कारण अनियंत्रित लालसा है। व्यक्ति या विश्व जिसे भी शांति की चाह है, उसे अनियंत्रित लालसा से बचना होगा। शांति के लिए ऐसे अहिंसक समाज का निर्माण अपेक्षित है जिसमें जीवन का प्रवाह चलता रहे और आक्रमण व शोषण न हो। संकल्पपूर्वक की जाने वाली हिंसा समाप्त हो जाए।

आचार्य तुलसी पुनः कहते हैं–आज सुरक्षा से भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न मानवीय एकता का है जिसकी प्रेरणा है–समानता। जाति, रंग, भाषा और राष्ट्रीयता की भिन्नता में भी मानवीय अभिन्नता है। व्यक्तिगत आकांक्षा और अहं इसे भी गौण कर देती है। अपनी समृद्धि एक सीमा तक न्यायसंगत है, किन्तु जब वह दूसरों के अस्तित्व को संकट में डालने लग जाये तब वह सर्वमान्य न्यायसंगत धरातल से नीचे उतर जाता है। इसलिए हमें यह स्वीकार करना होगा–

- समाज रचना का आधार अपरिग्रह और अहिंसा है।
- अहिंसा को व्यवहार में लाना युग की मांग है।
- आवश्यकताओं का विस्तार न हो तथा दूसरे की आवश्यकताओं पर अधिकार करने की कोशिश न हो।
- जातिगत संघर्षों को प्रश्रय न दें।
- अपनी शांति के लिए दूसरे की शांति का अपहरण न करें।

विश्व शांति की चाह यथार्थ है तो हमें शम (कषाय-क्रोध, मान, माया, लोभ), सम (समानता) तथा श्रम की प्रतिष्ठा करनी ही होगी तभी मानवीय एकता को समर्थन मिलेगा, तभी शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व संभव होगा, तभी शोषणमुक्त स्वतंत्र समाज की रचना का स्वप्न साकार होगा और तभी नैतिक मूल्यों, मैत्री, निःस्त्रीकरण एवं शांति प्रयासों को बल मिलेगा। ❑

# ढलती उम्र को आनन्द के साथ जीएं

***

सुश्री वीणा जैन

मेरी दृष्टि में ढलती उम्र (प्रायः 60 वर्ष के बाद) और वृद्धावस्था में अन्तर है। वृद्धावस्था शारीरिक अवस्था के साथ-साथ एक मानसिक आध्यात्मिक अवस्था भी है।

यह निश्चित है कि उम्र के ढलते-ढलते शारीरिक रूप से वृद्धत्व के लक्षण प्रकट होने लगते हैं, परंतु वह व्यक्ति वास्तव में बूढ़ा ही हो गया हो, ऐसा नहीं होता है। 30-35 वर्ष का युवा भी बूढ़ा हो सकता है, यदि उसमें जीने का उत्साह नहीं है, उसमें असुरक्षा की भावना है; नकारात्मक सोच, उबाऊपन, निठल्लापन, अकेलापन उसके जीवन के अंग बन चुके हों, तो दूसरी ओर 70-75 वर्ष के व्यक्ति को युवा कहा जा सकता है, यदि वह उत्साही है, सकारात्मक सोच वाला है, जोखिम उठाने की क्षमता रखता है, अपने आपको नई परिस्थिति में ढालने की चाह रखता है, जीवन के हर क्षण को आनन्दमय बिताने का गुर जानता है, आदि-आदि। शरीर बूढ़ा हो जाता है पर अवचेतन मन सदैव युवा रहता है। वृद्धावस्था का संबंध आनंद, सुख, शांति से है।

प्रश्न उठता है—क्या खुशी का संबंध पैसे से है? क्या भौतिक सुख-सुविधाओं के उपभोग से है? क्या वासना की संतुष्टि से है, क्या धर्म उपासना से है? या कमोबेश समवेत रूप से इन सभी से है? या यह केवल एक दृष्टिकोण है, नजरिया है। मैं सोचती हूं, प्रसन्नता एक आंतरिक भावनात्मक स्थिति है। यह कैसे प्राप्त होती है, किस साधन से होती है, यह प्रत्येक व्यक्ति-व्यक्ति पर अलग-अलग निर्भर करता है।

डब्ल्यू. एच. ओ (वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन) ने स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए लिखा है—'भौतिक, मानसिक, सामाजिक—तीनों प्रकार की स्वस्थता का अर्थ केवल भौतिक, मानसिक और सामाजिक बीमारियों से मुक्त होना ही नहीं है, बल्कि यह एक आध्यात्मिक अवस्था है जो जीवन का अनिवार्य चौथा आयाम है।'

यह सही है कि बायोलॉजिकल दृष्टि से उम्र के बढ़ने के साथ-साथ शारीरिक क्षमता में कमी आना, कोशिकाओं का शिथिल होना, न्यूरोन्स का कमजोर होना, असंतुलित स्राव होना, देखने-सुनने व याददाश्त की शक्ति का कम होना आदि अनेक बीमारियों के रूप में अभिव्यक्त होने प्रारंभ हो जाते हैं। फिर भी यदि बचपन से शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य के बारे में सही प्रशिक्षण मिल जाए तो इन्हें काफी लम्बी उम्र तक

अभिव्यक्त होने से रोका जा सकता है। परन्तु प्रायः ऐसा होता नहीं है। बचपन पढ़ाई, खेलकूद, टी.वी., जूडो कराटे में तो यौवन धन कमाने, परिवार बनाने, सामाजिक प्रतिष्ठा को येन-केन-प्रकारेण बनाए रखने में बीत जाता है। उम्र ढल जाने पर एक स्थिति ऐसी आ जाती है जिसे प्राप्त करने में अपनी स्वर्णिम शक्ति लगा दी जाती है और उसका भरपूर आनंद भी नहीं ले पाता है। ऐसी स्थिति हो जाती है कि–

- हमारे पास पर्याप्त स्वादिष्ट भोजन है, पर पाचन नहीं।
- हमारे पास अपार धन-दौलत है, पर खुशी नहीं।
- हमारे पास समृद्ध परिवार है, पर भावनाओं को बांटने वाला कोई नहीं।
- हमारे पास नर्म बिस्तर है, पर नींद नहीं।

आखिर क्यों? जब जिन्दगी में पूरी शक्ति, उत्साह होता है उस समय केवल ऐन्द्रिक सुख-सुविधाओं में, अधिक से अधिक प्राप्ति की होड़ में जीवन बिता दिया जाता है यही मानकर कि सुख-आनंद इसी में है, पर सच यह है कि मानने और होने में बहुत अंतर होता है।

उम्र के ढलने के साथ शारीरिक समस्याओं का होना स्वाभाविक है तो बाह्य साधनों से इनका निजात पाना भी संभव है परंतु जटिल समस्या मानसिक है जो व्यक्ति को आनंदमय जीवन जीने से वंचित रखती है।

**मानसिक समस्याएं**–वृद्धावस्था के साथ कुछेक मानसिक समस्याएं उभरने लगती हैं, जैसे–

- आर्थिक सामाजिक दृष्टि से असुरक्षा की भावना पनपने लगती है।
- शारीरिक क्षमता और मानसिक सोच में दूरियां बढ़ जाती हैं। शरीर बूढ़ा होता है, मन युवा रहता है।
- युवापीढ़ी और वृद्ध लोगों में जनरेशन गेप हो जाता है।
- कुछ प्रायः अतीत की स्मृतियों या भावी असुरक्षा की भावना के बीच वर्तमान क्षण के आनन्द से वंचित रह जाते हैं। 'हमारा जमाना ऐसा था' कहकर वर्तमान को नकारते हैं जो युवा–पीढ़ी को सह्य नहीं होता। परिणामस्वरूप वह अलग-थलग पड़ जाते हैं।
- अकेले में समय बिताने की समस्या बन जाती है–देश, काल, परिस्थिति, विभिन्न संस्कृति के विभिन्न परिवेशों में इन समस्याओं का स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है।

इन समस्याओं से निजात पाने के लिए अलग-अलग स्तर पर धर्मगुरु, धर्मग्रंथ, समाज-सुधारक समाधान देते रहे हैं, परन्तु यह स्वयं व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह जीवन को जीना चाहता है या जीवन बिताना चाहता है। शांत, सुखी और समाधिस्थ जीवन जीने के लिए कुछेक समाधान प्रस्तुत किए जा सकते हैं–

- कभी अपनी तुलना दूसरों से न की जाए।
- छोटे-छोटे कार्यों में सहयोग करके परिवार में अपनी उपयोगिता बनाई रखी जाए।
- हलके-फुलके अध्ययन, कुछ लिखने एवं स्वरुचि (हॉबी) में अपने आपको व्यस्त रखा जाए।
- जहां तक हो सके अपनी रुचि और योग्यतानुसार पार्ट-टाइम कार्य में अपनी शक्ति लगाई जाए।
- हमउम्र के लोगों के साथ, जिन्हें हम चाहते हैं, स्वस्थ चर्चा में समय बिताएं।
- किसी न किसी स्वैच्छिक संस्था से अपने आपको जोड़े रखें। हो सके तो कुछ निःशुल्क सेवाएं दें।
- बच्चों के साथ खेलें, युवाओं के प्रति स्नेहभरा दृष्टिकोण रखें, उनकी सोच को स्वीकारें। जहां तक हो सके, उन्हें अपना मित्र बनाएं, उनकी स्थिति में अपने आपको रखकर उन्हें समझने का प्रयत्न करें।

- पारिवारिक लोगों से ज्यादा अपेक्षाएं न रखें। अनावश्यक दखलंदाजी न करें, अनावश्यक राय न दें।
- अपनी आवश्यकताओं का सीमाकरण करें।
- कुछेक साधना के प्रयोग–जैसे, टहलना, योगाभ्यास, ध्यान, चिंतन, कायोत्सर्ग, प्राणायाम, दीर्घ-श्वास आदि का नियमित प्रयोग करें।
- युवावस्था में कुछ धार्मिक सूक्तियां, गीतिकाएं, सूत्र आदि को कंठस्थ कर लिया जाए तो वृद्धावस्था के खाली समय का उन्हें गुनगुनाने में आनन्द लिया जा सकता है।
- अपना एक भावनात्मक खाता (Emotional Bank Account) खोलें। इस बैंक से आप अपने अनुभव एवं सहकारिता का विनिमय कर सकते हैं। इससे आपका यह खाता बढ़ता जाएगा। दूसरे बैंकों में रखा पैसा खर्च करने पर घटता जाता है परंतु इस बैंक का खाता खर्च करने पर बढ़ता जाता है। आपको पता ही नहीं चलेगा कि इस बैंक के सहयात्री ने आपको क्या सहयोग दिया है।
- टी.वी. आदि पर ऐसे सीरियल, कार्टून फिल्म आदि तैयार होनी चाहिए जो बच्चों और युवाओं में बुढ़ापे के प्रति शुरू से ही संवेदनाएं जगा सकें। उन्हें अनुपयोगी मानकर घर के एक कोने में न बैठा दिया जाए। यह दुधारी क्रिया हो सकती है। एक ओर वृद्ध अपनी युवावस्था के बारे में सोचकर अपनी स्थिति का जायजा लेंगे, तो युवा सोचेंगे कि भविष्य में वृद्ध होने पर उनके साथ क्या किया जाएगा। इससे दोनों वर्गों की दूरियां समाप्त हो सकती हैं।

कई देशों में वृद्धों के लिए सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा प्रदान की जाती है। वृद्धों के लिए पृथक् आवासीय सुविधाएं दी जाती हैं। चाहे कोई भी समाज हों, पारिवारिक लोग हों, एन.जी.ओ हों। यदि वे वृद्धों की समस्याओं के समाधान में अपना योगदान देते हैं, वे प्रशंसनीय हैं, पर ये सब बाह्य उपाय होंगे। आंतरिक उपाय तो स्वयं व्यक्ति के चिन्तन, शिक्षा, मानसिक भावों के उत्थान पर निर्भर करेगा कि उसके लिए उसे क्या प्रयत्न करने हैं। सही समय पर चित्त समाधि जैसे शिविर लगाकर सही प्रशिक्षण दिया जाए तो बहुत-सी समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है। शारीरिक मृत्यु से पहले मानसिक मृत्यु से बचा जा सकता है।

संक्षेप में कहा जाए तो वृद्धावस्था को हंसी-खुशी से स्वीकार करना चाहिए और मनुष्य रूपी जो अनमोल धरोहर हमें प्राप्त हुई है, उसका भरपूर आनंद लेना चाहिए। यह वह समय है जो हमारा अपने स्वयं के लिए है। हर मनुष्य में अनन्त शक्ति, अनन्त ऊर्जा है जो कभी बूढ़ी नहीं होती। यह हम पर निर्भर है कि हम गिलास को आधा भरा हुआ देखते हैं या आधा खाली। ❑

*अपने विचारों पर नजर रखिए – वे शब्द बन जाते हैं।*
*अपने शब्दों पर नजर रखिए – वे कर्म बन जाते हैं।*
*अपने कर्मों पर नजर रखिए – वे आदत बन जाते हैं।*
*अपनी आदतों पर नजर रखिए – वे चरित्र बन जाते हैं।*
*अपने चरित्र पर नजर रखिए, क्योंकि – वही आपकी नियति बन जाती है।*

# संस्कार : परत-दर-परत

***

रणजीत सिंह कूमट

मन केन्द्रित होने से व्यक्ति ध्यान की ओर बढ़ता है। ध्यान से समाधि प्राप्त होती है, परन्तु प्राण की साधना और केन्द्रित मन का उपयोग मन की शुद्धि के लिए करना है। मन पर बिछी परतों को साफ करना है। जब तक परत-दर-परत संस्कार साफ नहीं होते मन शुद्ध नहीं हो सकता है और उसके लिए यह जानना आवश्यक है कि संस्कार क्या है और इसकी परतें कैसे बनती हैं?

शरीर अपनी इन्द्रियों से शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि प्राप्त करता है। इनको प्राप्त करने पर शरीर में संवेदना होती है। इस संवेदना को प्राप्त करने वाले मन के हिस्से को विज्ञान कहते हैं। संवेदना प्राप्त करने के बाद उसे पहचानना संज्ञा कहलाता है। संज्ञा से यह पहचाना जाता है कि शब्द या रूप पहले देखा या सुना हुआ है या नया है? किसका शब्द है या किसका रूप आदि। मन का तीसरा हिस्सा इस संवेदना का तोल- मोल करता है कि अच्छा है या बुरा, शब्द कर्कश है या मधुर, रूप सुन्दर है या भयावह, गन्ध अच्छी है या बुरी आदि। मन के इस भाग को वेदना कहते हैं। यहां तक तो प्राप्त करना, पहचानना और तोल-मोल करने का कार्य हुआ, अब मन का चौथा और महत्त्वपूर्ण हिस्सा है संस्कार। यह तय करता है कि इस संवेदना के प्रति क्या प्रतिक्रिया हो ? अच्छी संवेदना है तो और प्राप्त की जाये और बुरी संवेदना हो तो दूर हटाई जाए। यह प्रतिक्रिया संस्कार का निर्माण या मन पर विभिन्न प्रकार के आग्रह तैयार करती हैं। इन आग्रह और संस्कारों से मन का संस्कारीकरण हो जाता है और यह व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाता है। व्यक्ति की प्रतिदिन की क्रिया एवं प्रतिक्रिया इन संस्कारों से संचालित होती है। ये संस्कार जन्म या गर्भ से ही प्रारम्भ हो जाते हैं। गर्भ में जब बालक आठ माह का हो जाता है, तब से पहचानने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है और उससे ही संस्कार निर्माण होने लगते हैं, लेकिन अधिकांश संस्कार जन्म के बाद प्रथम पांच वर्षों में बनते हैं और बाद में भी बरकरार बने रहते हैं। बालक अपने वातावरण में जो भी सुनता और देखता है सबको चुपचाप आत्मसात् करता रहता है। हम समझते हैं कि एक साल से कम का बालक क्या समझता होगा, परन्तु वास्तविकता यह है कि इतने छोटे बालक का मस्तिष्क एक कैमरे की तरह कार्य करता है जो चुपचाप सभी चित्रों का रेखांकन करता चला जाता है। मस्तिष्क इन चित्रों का वीडियो कैसेट की तरह स्मृति में संग्रहित कर लेता है और इनमें से जिन चित्रों पर बालक ने प्रतिक्रिया की है वे संस्कार के रूप में निर्मित हो जाते हैं।

बालक बहुत छोटा होते हुए भी प्रतिक्रिया करता है। मान लीजिए एक चोर घुस आए और बालक के सामने माता–पिता को मारे या उनके साथ बुरा व्यवहार करे तो बालक डर से जोर-जोर से चिल्लाता है और रो-रोकर प्रतिक्रिया जाहिर करता है। यदि यह घटना बहुत क्रूर है तो वैसी ही प्रतिक्रिया और संस्कार दिमाग पर बनेंगे और बालक के बड़े होने पर यदि वैसी ही घटना फिर घटे तो जो संस्कार और प्रतिक्रिया बचपन में हुई वह पुनः घटित होगी। बचपन की उस घटना से बालक विद्रोही बन सकता है या एकदम घुग्घू। उसका बोलना बन्द हो सकता है या एकदम चुपचाप रह सकता है।

जिस प्रकार हिंसक घटना से संस्कार तीव्र रूप से अंकित हुआ उसी प्रकार प्रिय घटनाओं के भी संस्कार बनते हैं। प्यार व दुलार के प्रिय संस्कार बनते हैं और जो बच्चे प्यार नहीं पाते हैं वे सबको अपना दुश्मन समझने लगते हैं।

बचपन से ही बनने वाले ये संस्कार कई प्रकार की कल्पनाएं, चेहरे और चित्र मन पर छोड़ जाते हैं और ये संस्कार भविष्य में ऐसी ही घटनाएं होने पर क्या प्रतिक्रिया करेंगे, इसके भी संकेत (चिह्न) छोड़ देते हैं और तब मन बिना अधिक विश्लेषण किये पूर्वानुभव और पूर्वाग्रह के आधार पर तत्क्षण प्रतिक्रिया कर देता है। हर बार खुजलाहट के लिए चेतन मन हाथ को आज्ञा नहीं देता कि खुजलाहट मिटाए। यह आदत बन गई और स्वाभाविक प्रतिक्रिया हो गई। इसी प्रकार सुरक्षा के लिए या अप्रिय घटना से बचने के लिए रिफ्लैक्स-एक्शन स्वतः होता है। रिफ्लैक्स कॉम्पलेक्स आदि शब्द संस्कार को ही प्रतिभासित करते हैं।

हर संवेदना की प्रतिक्रिया होती है और हर प्रतिक्रिया से संस्कार-निर्माण होता है। प्रतिक्रिया पुनः किसी प्रतिक्रिया को पैदा करती है और यह संस्कार-चक्र अनवरत चलता है। जब तक संस्कार है प्रतिक्रिया होगी और जब तक प्रतिक्रिया करेंगे संस्कार बनेंगे।

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि क्रिया और प्रतिक्रिया में फर्क है। क्रिया वह है जो जानकर की जाए और प्रतिक्रिया वह है जो अनजाने में होती रहे। व्यक्ति जब जानकर निर्णय लेकर कोई कार्य करता है वह क्रिया है; लेकिन बिना जाने ही पूर्वाग्रह या पूर्व संस्कार से जो कार्य किया जाता है वह प्रतिक्रिया है।

अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य कितना कार्य जानकर करता है और कितना अनजाने में करता है? मनोवैज्ञानिक बताते हैं कि नब्बे प्रतिशत से भी अधिक कार्य तो अनजाने या प्रतिक्रिया के रूप में होते हैं। बहुत कम कार्य जानकारी से होते हैं। इसीलिए कई व्यक्ति कार्य कर चुकने के पश्चात् पछताते हैं कि ऐसा वे चाहते न थे, परन्तु कर गये। क्रोध में पागल होकर प्रतिक्रिया कर दी और बाद में पछताए कि यह क्या किया? यह सब अन्धी प्रतिक्रिया है। संस्कारजनित प्रतिक्रिया है। यदि कुछ क्षण के लिए रुक कर सोच लेते तो शायद वैसी प्रतिक्रिया न करते।

वास्तविकता यह है कि हम अपने चिन्तन, संवेदना और प्रतिक्रिया के प्रति जागरूक नहीं हैं। हम अपने आपको नहीं जानते हैं और अधिकांश कार्य अनजाने में करते हैं, यद्यपि छाती ठोक कर कहते हैं कि यह कार्य मैंने किया जबकि कार्य करने वाले तो संस्कार थे और व्यक्ति केवल उपकरण-मात्र। संस्कार मुक्त होकर कार्य कहां होता है? संस्कार का निर्माण भी हम करते हैं और उससे मुक्त होने का उपाय भी हमारे पास है।

जो भी क्रिया या प्रतिक्रिया हम करते हैं संस्कार का निर्माण होता है, परन्तु वे संस्कार कितने स्थाई हैं और कितने काल तक रहेंगे, यह हमारे भाव और कषाय के प्रकार व उसकी तीव्रता पर निर्भर करता है। यदि किसी क्रिया के पीछे दया व करुणा की भावना है तो वह सुसंस्कार का निर्माण करती है। यदि इसके पीछे दुर्भावना है तो कुसंस्कार का निर्माण करती है। यदि कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) तीव्र हैं तो संस्कार तीव्र प्रकृति का होगा और मन्द हैं तो मन्द प्रकृति का होगा। यह संस्कार कितने काल तक रहेगा ? यह इस बात पर निर्भर है कि उस संस्कार को हमने कितनी बार पाला और पोसा है और उसे जीवित रखने की कोशिश की है।

उपरोक्त बात एक उदाहरण से स्पष्ट होगी। एक व्यक्ति ने हमें कुछ अपशब्द कहे। कानों को कर्कश लगा और अपने दिमाग में उसके प्रति जो मूर्ति थी उसे बड़ा धक्का लगा। इस मूर्ति से जितना अधिक चिपकाव होगा उतनी ही तीव्र प्रतिक्रिया होगी।

समझदार व्यक्ति इस घटना के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं करेगा और कोई संस्कार का निर्माण नहीं होगा। कम समझदार व्यक्ति प्रतिक्रिया करेगा और उसको वापस अपशब्द कहेगा। अब इस प्रतिक्रिया

से पुनः प्रतिक्रिया होगी और शृंखला प्रारम्भ होगी। अब पहला व्यक्ति क्या कहता है और उससे फिर क्या धक्का लगता है और क्या प्रतिक्रिया होती है, यह सब कल्पना की बात है, लेकिन स्पष्ट है कि एक अप्रिय घटना हादसा बन सकती है और केवल वाक्युद्ध होकर भी रह सकती है। जो भी हो, संस्कार निर्माण की काफी सामग्री मिल गई। अब यह वाद-विवाद क्या रूप लेगा, कितने दिन की दुश्मनी रहेगी, यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि दोनों पक्ष कितने दिन तक गुस्सा रखते हैं और कितनी बार उस गुस्से के आवेश में पुनः मिलने पर प्रतिक्रिया करते हैं या अपने ही अवचेतन मन में प्रतिक्रिया करते रहते हैं। वे घटना को आई-गई कह कर समाप्त कर देते हैं तो संज्वलन कषाय (पानी पर लकीर खींचने) की तरह संस्कार का निर्माण होकर समाप्त हो सकता है। अधिक समय चले तो बालू मिट्टी पर लकीर की तरह संस्कार का निर्माण होकर समाप्त हो सकता है। लेकिन संस्कार जब पत्थर की लकीर की तरह कायम होते हैं तो जन्म-जन्मान्तर तक ये संस्कार कार्य करते हैं। पत्थर की लकीर की तरह संस्कार तब बनते हैं जब हम घटना की प्रतिक्रिया मन ही मन दोहराते हैं, उस पर चिन्तन करते हैं और संकल्पों को दृढ़ करते रहते हैं। इससे पूर्वाग्रह का निर्माण होता है और जब दूसरा व्यक्ति वापस सामने आता है तो निमित्त पाते ही प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है या कभी-कभी संस्कार इतने तीव्र होते हैं कि निमित्त का भी इन्तजार नहीं करते और प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

गजसुकुमाल मुनि का उदाहरण लें। कथानुसार गजसुकुमाल कृष्ण के छोटे भाई थे। एक दिन कृष्ण राजमार्ग पर जा रहे थे। उन्होंने एक सुन्दर बालिका को देखा। निर्णय किया कि उसकी शादी गजसुकुमाल से की जाये। बालिका के पिता सोमिल ब्राह्मण को बुलाकर अपना निश्चय बता दिया। सोमिल के लिए अहोभाग्य था, परंतु दूसरे ही दिन गजसुकुमाल को भगवान अरिष्टनेमि तीर्थंकर के दर्शन को गये और उन्हें वहीं वैराग्य हो गया। उन्होंने उसी दिन दीक्षा ले ली और दीक्षा लेकर श्मशान में तप करने चले गये। जब वे श्मशान में ध्यान लीन थे, सोमिल ब्राह्मण उधर से निकला और वह अपने होने वाले दामाद को तपस्वी वेश में देखकर आग-बबूला हो गया। उसकी लड़की का विवाह राजघराने में होने वाला था और उसी व्यक्ति ने वचन भंग कर दिया। उसने अपने क्रोध की सब सीमा लांघ कर ध्यानस्थ गजसुकुमाल के सिर पर गीली मिट्टी की पाल बनायी तथा बीच में जलते हुए अंगारे रख दिये। सोमिल अंगारे रखकर तत्काल भाग गया। गजसुकुमाल ने इसकी कोई प्रतिक्रिया न की, सारे दुःख को शरीर का दुःख मानकर वे ध्यानावस्था में बैठे रहे और वेदना को समता भाव से सहन करते रहे। वे सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए। यहां सोमिल ब्राह्मण की कार्यवाही पर विशेष नजर डालें। उसने प्रतिक्रिया कितनी तीव्र की, क्या कोई अपने होने वाले दामाद को वचन भंग के लिए बिना पूछे और अन्य समाधान किये बिना ही इतनी तीव्र वेदना और सजा दे सकता है? वह अवश्य अपने पूर्वसंस्कारों से ग्रसित था और उसके वशीभूत होकर उसने यह क्रिया की।

इस क्रिया से एक ओर भय का संस्कार उसमें बना। उसने द्वारिका के राजा कृष्ण के भाई को सताया है, वह बच कैसे जायेगा, अतः वह जल्दी-जल्दी द्वारिका से भागने लगा, परन्तु रास्ते में ही कृष्ण की सवारी को आते देख लिया। कृष्ण को देखते ही भय के संस्कारों ने ऐसा कार्य किया कि वह सड़क पर गिरकर वहीं मर गया। यह है संस्कारजनित क्रिया एवं प्रतिक्रिया का एक उदाहरण। ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे।

संस्कारों की परतें बनती रहती हैं और हम उनमें बन्धकर प्रतिक्रिया करते रहते हैं और नये संस्कार बनाते जाते हैं। संस्कार बनाते ही नहीं, उनको पाल-पोस कर अधिक सुदृढ़ भी बनाते हैं। जितने ये संस्कार सुदृढ़ होते हैं उतनी ही तीव्र प्रतिक्रिया करते हैं। यह परतें हमें बांधे रखती हैं और हम अपने आपको विवश महसूस करते है, परंतु इन संस्कारों से मुक्ति पाना हमारे हाथ में है और संस्कार-मुक्ति ही जीवन्-मुक्ति है। ❑

# शिखर छूने के रास्ते

समणी मल्लीप्रज्ञा

जीवन की छोटी-छोटी बातें व्यक्ति को महान् बना देती हैं, ऐसा कथन प्रायः कहा, पढ़ा या सुना जाता है। जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि वे कौन-सी ऐसी बातें हैं, जिनको जीवनचर्या का अंग बनाकर मनुष्य सफलता की डगर को आसान बनाता हुआ ऊंचाइयों के शिखर को छू सकता है? प्रत्येक धर्म-दर्शन में सदाचार और सद्व्यवहार एवं जैन धर्मदर्शन में भी शिष्टाचार के 33 प्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है, जो तैंतीस आशातना के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनका व्यवहार लोक जीवन को सरस, सुखी, समृद्ध एवं सफल बनाने में भरपूर सहयोगी बन सकता है।

प्रश्न व्याकरण नाम धर्मग्रन्थ में गुरु-शिष्य के व्यवहार की मनोवैज्ञानिक विवेचना के प्रसंग में तैंतीस तरह के लोक विनय का वर्णन किया गया है। उन सबका सोफ्ट स्किल, पर्सनैलिटी डवलपमेंट, स्मार्ट परफॉरमेंस, स्वर फिटनेस के युग में प्रशिक्षण किसी भी कार्यक्षेत्र में बेहतरीन प्रदर्शन तथा कामयाबी दिलाने में पावर प्वॉइण्ट का कार्य कर सकते हैं।

परिस्थिति के मुताबिक पदस्थ और अधीनस्थ, बॉस और मैनेजर, अधिकारी और कर्मचारी, प्रशासक और प्रशासित वर्ग, सीनियर और जूनियर, वरिष्ठ और कनिष्ठ, हाइग्रेड और लोग्रेड, फर्स्ट क्लास और फोर्थ क्लास के स्तर पर कार्यरत व्यक्तियों में मानवीय संबंध मधुर कैसे रहें? अहंकार और पद की अड़चनें न आएं, उच्चता और हीनता की ग्रंथि का विमोचन हो सके। कार्य स्थान पर समरसता एवं सामुदायिक विकास की चेतना को प्रशिक्षित करने के लिए निम्नोक्त-रास्तों पर कदम बढ़ाए जा सकते हैं।

सबके प्रति उचित व्यवहार को लोकाचार कहा जाता है। इसके विपरीत अनुचित व्यवहार परस्पर में अनादर, अविश्वास पैदा करता है। इससे सफलता की बात खटाई में पड़ जाती है। शिखर का सपना तलहटी पर ही थम जाता है। आचार्य तुलसी ने इस सन्दर्भ में बहुत सटीक लिखा है–

**गुरु रत्नाधिक के प्रति, हो अनुचित व्यवहार।**
**कहलाती आशातना, है तैंतीस प्रकार।।**

## जीवनचर्या के सूत्र

पदस्थ से सटकर, उससे आगे या फिर बराबर चलना लोक व्यवहार का हनन है। उनसे

दो कदम पीछे चलना विनम्रता का परिचायक है। शालीनता एवं शिष्टता का द्योतक है। बड़ों के प्रति सहज सम्मान प्रस्तुति का ढंग है। स्वयं को अच्छा सहायक कहलाने का भी अवसर मिलता है। दो कदम पीछे रहकर आगे बढ़ने के अवसरों को आसानी से देखा जा सकता है। जिस प्रकार चलने में लोकाचार की विधि बताई गई, वैसे ही बड़ों से सटकर, आगे या बराबर बैठना और खड़े रहने का भी निषेध किया गया है। इससे आगन्तुक को कौन अग्रगामी और कौन अनुगामी है–इसका भेद पता नहीं चलता। बैठने की व्यवस्था में भी दिक्कत आती है। क्रम-निर्धारण में भी परेशानी हो सकती है। स्वागत व्यवस्था में असमंजस की स्थिति बन सकती है। अविनय भी बढ़ेगा। लोकापवाद भी होने की संभावना है। इसलिए उपरोक्त निषिद्ध व्यवहार लोकनीति का रक्षक है। कार्यक्रम और व्यवस्था दोनों दृष्टियों से उपयोगी है। विधि-निषेध की नीति ही कर्तव्य प्रतिष्ठा का आधारभूत स्तंभ बनती है।

## नित्यकर्म भी क्रम से

मनुष्य की दिनचर्या का शुभारंभ होता है उसके नित्यकर्म से। उसमें भी विवेक का निर्देश दिया गया है। यदि दैहिक आवश्यकतापूर्ति के लिए साधन बड़े और छोटे दर्जों के लिए साथ में हो तो छोटे को बड़े द्वारा उपयोग लिए जाने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए ताकि लोकव्यवहार का कायदा कायम रह सके तथा बड़ा भी छोटे का ज्यादा ध्यान रखेगा। जो दूसरों का खयाल रखता है, उसका दूसरे खयाल करते हैं, यह प्रतिध्वनि का सिद्धान्त सामाजिक व्यवहार में अच्छी तरह प्रतिष्ठित है।

यात्रा के उपरान्त कायोत्सर्ग, आराम आदि की क्रिया में भी बड़ों का पूरा क्रम सम्पन्न होने तक छोटों को प्रतीक्षा इसलिए करनी चाहिए ताकि यदि कोई सामग्री चाहिए तो उसकी सम्पूर्ति की जा सके। छोटों को प्रायः बड़ों के काम आने वाली वस्तुओं का ध्यान भी रहता है। कम समय में कार्यसम्पादन में सुविधा होने से बड़ों की प्रसन्नता में वृद्धि होती है जो कि अधीनस्थ के प्रति सकारात्मक ऊर्जा का संचार करती है। अनुकूल अवसरों के लिए वातावरण तैयार करती है।

## जागे सो पाए

पदस्थ या ज्येष्ठ यदि यह पूछे कि कौन क्या कर रहा है? कौन सो रहा है और कौन जाग रहा है? ऐसा पूछने पर अधीनस्थ या कनिष्ठ का मौन रहना अहितकारी होता है। कौन क्या कर रहा है? इस कथन से अग्रगामी अपने कार्यरत वर्ग की रिपोर्ट भी लेना चाहता है। उसका सही जवाब उनकी पदोन्नति में सहायक बनता है। बिना सोए सोने का बहाना कर मौन रहने से आलस्य प्रकट होता है। संभव है किसी बड़े अवसर से वंचित रह जाए। जाग्रत रहकर अधिकारी की बात को ध्यान से ग्रहण करना तथा स्वयं को उसके लिए प्रस्तुत करना स्वयं का भाग्य संवारना है। नेता का विश्वास भी बढ़ेगा, उसे कई नए पदों या लाभांशों से जोड़ सकता है। बात छोटी होती है, उसका परिणाम दूरगामी तथा भारी हो सकता है, इसलिए इस उसूल की पालना करना पालक के लिए हितकारी है। वह सदैव आदेश की अनुपालना में तत्पर रहे।

## समागत के प्रति कर्तव्य

अभ्यागत जब भी आए, उसे सर्वप्रथम अपने बॉस, गुरु या पदज्येष्ठ से मिलाना मैनेजर, शिष्य और कनिष्ठ का नैतिक कर्तव्य होता है, अन्यथा शंका हो सकती है। पदस्थ यह सोच सकता है कि मेरे से पहले मेरे उपभोक्ता से मिलकर पता नहीं नकारात्मक या सकारात्मक रवैया आगन्तुक के कान में डाला होगा। या फिर वह यदि सौदा करने आया है तो उससे पहले ही सांठ-गांठ न कर ली हो। कमीशन का सौदा कर सकता है। पदोन्नति की सिफारिश न कर दी हो। अपनी कीर्ति-ख्याति अपने पदस्थ से बढ़ा–चढ़ाकर की जा सकती है। ऐसे अनगिनत संदेह के घेरे अधीनस्थ के व्यक्तित्व को धूमिल कर सकते हैं तथा उसकी ड्यूटी भी बदली जा सकती है। अच्छे अवसरों को भी खोना पड़ सकता है तथा बड़े व्यक्तियों के ज्ञान, अनुभव से

भी वंचित रहना पड़ सकता है। खुद का भला चाहने वाले व्यक्ति को इस व्यावहारिक हिदायत को जरूर ध्यान में रखना चाहिए कि कोई समागत व्यक्ति यदि बॉस या सीनियर से मिलना चाहे तो उसे पहले प्रत्यक्ष उसी से मिलाए।

## भोजन के समय क्या करें, क्या न करें

खान-पान की सामग्री को अपने से छोटों को दिखाना या तत्संबंधी वार्तालाप करना भोजन के समय बड़ों का अनादर है। बड़ों को बाद में निमंत्रित करना ओछी वृत्ति का परिचायक है। यह स्वयं के बड़प्पन का प्रदर्शन भी है तथा छोटों के साथ गुटबंदी की संभावना भी परिलक्षित हो सकती है। इससे संस्कार, संस्कृति एवं परम्परा स्वस्थ नहीं रहते, इसलिए व्यवस्था एवं व्यवहार दोनों स्थितियों को सम्यक् बनाए रखने के लिए भोजन के समय सर्वप्रथम बॉस, फिर सीनियर वर्ग को वरीयता देना कनिष्ठ द्वारा अपना सम्मान बढ़ाना है। इसी प्रकार सामूहिक भोजन सामग्री को बिना निर्देश के दूसरों को बांटना, स्वादिष्ट आहार को अपने दोस्तों के साथ मिल-बैठकर समय से पहले खा लेना आदि अनुचित प्रवृत्तियां व्यवस्था एवं व्यवहार दोनों को बिगाड़ती है। इससे बचना कंपनी एवं कर्मचारी दोनों के लिए श्रेयस्कर है। आजकल होटल मैंनेजमेंट में ऐसा प्रशिक्षण भी दिया जाता है. जिसे आधुनिक भाषा में कॉमनसेंस कहा जा सकता है। इसका संबंध कोरी शिक्षा से न होकर व्यवहार कौशल के प्रशिक्षण से भी है। इससे सामुदायिक व्यवस्था सुदृढ़ बनी रहती है। भीतरी वातावरण भी अहिंसक रह सकता है।

## बॉस को यों न सुनें

बॉस की बात को मानना अधीनस्थ की विवशता न होकर विकास का आधार मानना ऑफिस के वातावरण को खुशहाल बनाए रखता है। बॉस या मैनेजर के निर्देशों को नजरंदाज करना अधीनस्थ का नौकरी से हाथ धोने से लेकर अनेक अवसरों से वंचित होना है, क्योंकि शीर्षस्थ व्यक्ति उचित निर्देश की अनुपालना के आधार पर ही अधीनस्थों के माध्यम से कंपनी को आगे बढ़ाता है। परस्पर वार्तालाप, Brain Storming Session संगोष्ठी आदि प्रसंगों पर बिना संयम के बोलना, अंटसंट बोलना, ऊंचे स्वर में बोलना, ओछे शब्दों का प्रयोग करना, प्रतिक्रियात्मक प्रश्नों की झड़ी लगाना आदि अधीनस्थ की अगंभीरता को जताता है। परिस्थिति की समझ को भी निम्न कोटिक दर्शाता है तथा अविनम्रता, अशालीनता भी प्रकट होती है। आजकल की भाषा में इसे Soft Skill का अभाव माना जाता है। उचित वचन व्यवहार, व्यक्ति के भाग्योदय में बहुत सहायक बनता है। बॉस एवं सीनियर के केन्द्रीय ऑफिस एवं विभाग में बैठने के लिए ये सारे गट्स निर्देशक तत्त्व के रूप में कार्य करते हैं।

## मीटिंग में अपनी छाप ऐसी न छोड़ें

मीटिंग चल रही है। बॉस या सीनियर ने कोई प्रस्ताव पर भाषण दिया है। श्रोता वर्ग यदि उसका समर्थन न करें तो नियामक व्यवस्था हतोत्साहित हो सकती है तथा उनकी प्रभावकता में भी संदेह हो सकता है। अधीनस्थ के प्रति विश्वास में भी दरार आ सकती है या फिर वक्ता को यहां तक कह देना कि आपको बहुत सारे तथ्य याद नहीं हैं। आपने अच्छी तरह प्रस्तुत नहीं किया। बात को काट देना, बीच में ही अपनी बात शुरू कर देना, वातावरण को उत्तेजित करना, उसी तथ्य को तोड़-मरोड़ कर रखकर दूसरों को गुमराह कर देना–इस प्रकार ये सारे व्यवहार के तौर-तरीके संगोष्ठियों के आयोजन को असफल कर देते हैं तथा विधानसभा, लोकसभा के सत्र के समय शोर-शराबे-हंगामे की तरह शक्ति, ऊर्जा का अपव्यय करने वाले सिद्ध हो जाते हैं। ऐसे अधीनस्थ वर्ग को रखकर संगठन क्या करेगा? शालीन व्यवहार संगठन के हर क्षेत्र में अपेक्षित है। यह व्यवहार की लक्ष्मण रेखा है। इसका पालन अनिवार्य है, जिसे प्रशासन कौशल, कार्यकौशल भी कहा जाता है।

संगोष्ठी में जब एक बोले तो पूरा सुनना, प्रतिप्रश्न शिष्टता से पूछना, सकारात्मक एवं यथार्थ

## भाव काव्य पथ

चिर-प्यास मिलन की दोनों को, जन्मों-जन्मों की भटकन है।
मैं स्वयं मिलन की बाधा हूं, प्रत्यक्ष हुआ मेरा मन है।
हर पीड़ा का कारण मैं हूं, सच यह हर्षाता है मुझको।
यह सुमन बुलाता है मुझको।

हर उलझन, शंका, दुविधा में, हर पीड़ा और समस्या में,
हर प्रश्न का उत्तर बन जाता, चमकाता गहन रहस्यों में।
सम्पूर्ण समर्पित अहंकार ही, भुलवा पाता है मुझको,
यह सुमन लुभाता है मुझको।

मैं खुद छोड़ूं तो ना छूटे, वह छुड़वा देता है मुझको।
जब मैं करता, ना कर पाता, वह करवा-देता है मुझको।
मेरी चाहत लाचारी है, जब चाहे वह पाता मुझको।
बन जाता मैं उसके जैसा, महावीर बनाता है मुझको।
बन जाता मैं उसके जैसा, निष्काम बनाता है मुझको।
यह मन अपनाता है मुझको, यह सुमन बुलाता है मुझको।

**— डॉ. उम्मेद बैद**

चिन्तन रखना, पदस्तरीय व्यवहार की अनुपालना करना, बोलने से पहले आज्ञा लेना आदि नीतियां प्रत्येक धर्मदर्शन के प्रायः प्रत्येक धर्मग्रंथों में उपलब्ध है, जहां गुरु भी यह कहता सुना जा रहा है कि मैं भगवान की आज्ञा से ऐसा बता रहा हूं तथा शिष्य पूछता है-गुरुदेव! आपकी आज्ञा हो तो मैं यह प्रश्न पूछूं। गुरु भी कहता है-हां, वत्स! जिज्ञासा करो। यह परस्पर विनय एवं वात्सल्य की परम्परा आज के लोक-व्यवहार का मूल आधार है।

### दूबेजी से छब्बेजी भी न बनें

चलते-चलते किसी के ठोकर या ठेस लगे तो क्षमा मांगना। आसन या बैठक जिसके लिए निर्धारित हो उस पर न खड़े रहना, न बैठना और न ही सोना-यह बड़ों के प्रति छोटों का उचित व्यवहार है। सम्मान देने से सम्मान बढ़ता है-यह सूक्त अनुभवसिद्ध है।

निर्धारित आसन पर न केवल बैठना अपितु उस पर बैठकर पदस्थ की नकल करना भी स्वयं का ओछापन दिखाना है, पदस्थ के आसन के बराबर या उससे भी ऊंचे आसन पर बैठना या भाषण आदि के लिए ऊंचा खड़ा होना भी अधीनस्थ के स्वयं के अहंकार को पुष्ट करना है फिर. बॉस के पूछे जाने या बुलाए जाने पर अपने स्थान पर बैठे हुए उत्तर देना अधीनस्थ के लिए अहितकारी सिद्ध हो सकता है। उसकी अपनी इज्जत भी कम होती है। उसका प्रभाव एवं सम्मान दोनों घटने लगते हैं। इसलिए उपरोक्त व्यवहार की छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देकर और उन्हें अपनाकर **शुभ भविष्य है सामने**-इस परमपूज्य गुरुदेव तुलसी की उक्ति को सार्थक किया जा सकता है। ❑

# रंगों की भाषा

○○○

# जीवन की परिभाषा

एक बार लक्ष्मी के पास अंधकार के रंग मिलकर आए और बोले–'देवी! आप हमारा सहयोग करें। आपके सहयोग के बिना, आपकी छत्रछाया के बिना हमारा सम्मान नहीं होता, हमारा कोई आदर नहीं करता। इसलिए जहां हमारा अस्तित्व है, हमारी प्रतिष्ठा है, वहां आपको हमारा सहयोग करना होगा और हमारे साथ रहना होगा। हम आपकी छत्रछाया के इच्छुक हैं।' लक्ष्मी ने कहा–'अच्छी बात है, आऊंगी।' फिर लक्ष्मी के मन में प्रश्न उठा। उसने रंगों से पूछा–'यह तो बताओ कि तुम्हारी छत्रछाया में रहने वाले लोग कौन हैं और कौन व्यक्ति तुम्हें अच्छे लगते हैं?'

तब वे अंधकार के रंग बोले–'जो व्यक्ति क्षुद्र होता है, ओछी वृत्ति वाला होता है, स्वार्थी होता है, जो बिना सोचे-समझे काम करने वाला होता है, जो नृशंस होता है, जिसका इन्द्रियों पर कोई अधिकार नहीं होता, जो आसक्त होता है, क्रोध करता है, बात-बात में द्वेष की भावना लाता है, जो शठता से परिपूर्ण है, प्रमत्त है, आलसी है, रसलोलुप और वक्र आचरण वाला है, जिसका दृष्टिकोण मिथ्या है, जो किसी भी बात को सम्यग् ग्रहण नहीं करता, जो अप्रियभाषी और कर्कश वचन बोलने वाला है, जो चोरी करने वाला है, ईर्ष्या करने वाला है–ऐसे व्यक्ति हमें बहुत प्रिय हैं।'

लक्ष्मी ने सुना। वह असमंजस में पड़ गई। काले रंगों को छत्रछाया देना स्वीकार कर लिया, उसके साथ जाना और रहना स्वीकार कर लिया, अब वह दुविधा में पड़ गई। उसने सोचा–ऐसे व्यक्तियों के साथ कैसे रह पाऊंगी? उसने एक उपाय निकाला। वह रंगों से बोली–'मैं तुम्हारे साथ चलूंगी, पर तुम्हारे घर में नहीं रहूंगी, बाहर ही अलिन्द में रहूंगी।' लक्ष्मी उनके साथ चली गई। उसने अपनी छत्रछाया का वहां विस्तार भी किया, किन्तु वह घर के भीतर कभी नहीं गई। वह सदा अलिन्द में ही बैठी रही।

जैन दर्शन की भाषा में जो इस प्रकार के कृष्ण-लेश्या वाले, नील-लेश्या वाले और कपोत-लेश्या वाले लोग हैं, जो काले वर्ण वाले लोग हैं, उनके पास भी लक्ष्मी होती है, पर वह घर के भीतर नहीं जाती, शरीर के बाहर-बाहर ही रहती है, वह शरीर को सुविधा देती है, पर घर के भीतर नहीं जाती। मन के भीतर नहीं जाती, अतः मन की शान्ति नहीं होती।

एक दिन ऐसा ही एक दूसरा प्रसंग बना। प्रकाश के रंग मिलकर आए और लक्ष्मी से बोले–'महादेवी! आपकी छत्रछाया चाहिए, क्योंकि उसके बिना कोई जी नहीं सकता, सुखपूर्वक रह नहीं सकता।' लक्ष्मी बोली–'अच्छी बात है। तुम्हारे पास आ जाऊंगी। तुम्हें छत्रछाया दूंगी।' फिर पूछा–'तुम्हारा घर कैसा है? तुम्हारे लोग कैसे हैं? तुम्हारा परिवार कैसा है? तुम्हें कैसे लोग प्रिय हैं?'

प्रकाश के रंगों ने कहा–'जिनका व्यवहार विनम्र होता है, जो चपल नहीं होते, स्थिर मन के होते हैं, जो कपटी नहीं होते, मखौल नहीं करते, जो प्रियधर्मा होते हैं, जो धर्म में दृढ़ होते हैं, जिनका क्रोध और मान क्षीण हो चुका है। जिनका चित्त इतना शान्त है कि दुःख उनका स्पर्श तक नहीं कर पाता, ऐसे लोग हमें प्रिय हैं। वे हैं हमारे परिवार के सदस्य।'

जो उपशान्त होता है, जो जितेन्द्रिय होता है, जो मितभाषी होता है, जो पापभीरु और हित की एषणा करने वाला होता है–ऐसे लोग हमें प्रिय हैं। यह बात प्रकाश के रंगों ने लक्ष्मी से कही। लक्ष्मी बोली–'मुझे भी ऐसे ही लोग पसंद हैं। आप जाएं, चिन्ता न करें। मैं आपके यहां आऊंगी, बाहर नहीं, भीतर रहूंगी।' लक्ष्मी आई और भीतर जाकर बैठ गई। जैन दर्शन की भाषा में तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या के लोगों के पास लक्ष्मी रहती है, बाहर नहीं, भीतर। इसलिए ऐसे लोगों के मन में सदा शांति बनी रहती है। कभी-कभी उन्हें शारीरिक बाधाएं भी सताती हैं, पदार्थों का अभाव भी होता है, पर मन कभी अशान्त नहीं होता, क्योंकि लक्ष्मी भीतर आसन जमाए बैठी है।

यह प्रश्न बहुत बार आता है कि बुरे काम करने वालों के पास कितना धन होता है? उनके पास धन होता है, पर हम इस सूत्र को न भूलें कि लक्ष्मी बाहर बैठी है, घर के भीतर नहीं है। ऐसे व्यक्तियों को शारीरिक सुविधाएं मिल सकती हैं, किन्तु उनका मन अशान्त रहता है।

लोग यह भी कहते हैं–अच्छे आचरण करने वालों के पास धन होता है, पर उतना नहीं होता, जितना अपेक्षित होता है। वे वैभवशाली जीवन नहीं जी पाते। यह सच है, पर हम इस बात को न भूलें कि तेजो, पद्म और शुक्ल-लेश्या वाले लोगों के अन्तः-करण में लक्ष्मी बैठी रहती है। उसके मन की शान्ति कभी नहीं टूटती। वे कभी-कभी शारीरिक असुविधाएं भी भोगते हैं, पर मन अशान्त नहीं होता।

शान्ति और अशान्ति का प्रश्न लेश्याओं से जुड़ा हुआ है। हमारा दृष्टिकोण इतना बहिर्मुखी हो गया है कि हम मनुष्य का मूल्यांकन केवल पदार्थ के आधार पर करते हैं और केवल पदार्थ को ही धन या लक्ष्मी मानते हैं। दृष्टिकोण बदलना चाहिए। मूल्यांकन का एक ही दृष्टिकोण नहीं है, कई दृष्टिकोण हैं।

महावीर ने लेश्या के सिद्धान्त में, लेश्या के आधार पर ऋद्धि और वैभव की चर्चा की। दो दृष्टिकोण होते हैं–एक है पदार्थ का और दूसरा है व्यक्तित्व का, भाव और आचरण का। जो व्यक्ति कृष्ण आदि तीन लेश्याओं में रहता है, उसे बाहरी संपदा कभी-कभार उपलब्ध भी हो जाती है, किन्तु व्यक्ति का आंतरिक जीवन समाप्त हो जाता है। अध्यात्म साधना के संदर्भ में हम यह स्पष्ट समझें कि हम केवल धन की ही कामना न करें, किन्तु गुणों की कामना करें। हम केवल बाहरी व्यक्तित्व को सुखी बनाने की ही कामना न करें, किन्तु आन्तरिक व्यक्तित्व को सुखी, समृद्ध और आनन्दमय बनाने की कामना करें। ये दोनों बातें होंगी तो सामाजिक व्यक्ति का जीवन पूरा बनेगा अन्यथा खण्डित रहेगा, बाहरी संपदा पाकर भी लगेगा कि भीतर में रिक्तता है, खालीपन है। अभी कुछ पाया नहीं है। मन को कभी चैन नहीं होगा, शांति नहीं होगी। यह दरिद्रता बनी की बनी रहेगी। इसीलिए हम रंगों की उपासना करें, रंगों का ध्यान करें।

जो प्रकाशमय रंगों का ध्यान करता है, वह अपने आंतरिक व्यक्तित्व का निर्माण कर लेता है। जो व्यक्ति अंधकार के रंगों का ध्यान करता है, वह अपने व्यक्तित्व को अंधकार से भर लेता है, छिन्न-भिन्न कर देता है।

प्रकाश के दो-तीन रंगों की चर्चा मैं करना चाहता हूं। तेजो-लेश्या का बाल-सूर्य जैसा लाल रंग है, लाल रंग निर्माण का रंग है। लाल रंग का तत्त्व है–अग्नि। हमारी सारी सक्रियता, शक्ति, तेजस्विता, दीप्ति, प्रवृत्ति–सबका स्रोत है लाल रंग। लाल रंग हमारा स्वास्थ्य है। डॉक्टर सबसे पहले देखता है कि रक्त में श्वेत कण कितने हैं और लाल कण कितने हैं? लाल कण कम होते हैं तो वह अस्वास्थ्य का द्योतक है। लाल रंग प्रतिरोधात्मक शक्ति का प्रतीक है। वह बाहर से आने वाले को रोकता है, भीतर नहीं आने देता। लाल रंग में क्षमता है कि वह बाह्य जगत् से अन्तर्जगत् में ले जा सकता है, जब तक कृष्ण, नील और कपोत लेश्या काम करती है, तब तक व्यक्ति अन्तर्मुखी नहीं हो सकता, आध्यात्मिक नहीं हो सकता, अन्तर्जगत् की यात्रा नहीं कर सकता। वह आन्तरिक सुखों का अनुभव नहीं कर सकता। हम प्रेक्षा–ध्यान की प्रक्रिया में आन्तरिक सूक्ष्म स्पंदनों का अनुभव करना सिखाते हैं। मन जब सूक्ष्म होता है, तब वह सूक्ष्म कंपनों को पकड़ने में सक्षम हो जाता है। तीसरी बात है–रंगों का अनुभव करना। जब तैजस् शरीर के साथ हमारा संपर्क स्थापित होता है, तब रंग दीखने लग जाते हैं। जब हम दर्शन केन्द्र को सक्रिय करते हैं तब बाल-सूर्य का लाल रंग दीखने लग जाता है। उस समय व्यक्ति को कितनी आनन्दानुभूति होती है, बताई नहीं जा सकती। उस आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला ही उसे जान सकता है, वह उसे बता नहीं सकता। इस लाल रंग के अनुभव से, तेजो-लेश्या के स्पंदनों की अनुभूति से अन्तर्जगत् की यात्रा प्रारंभ होती है। लाल रंग नाड़ी संस्थान और रक्त को सक्रिय बनाता है। जब हम दर्शन-केन्द्र पर लाल रंग का ध्यान प्रारम्भ करते हैं और जब वह ध्यान सधता है, तब आदतों में परिवर्तन आना प्रारम्भ हो जाता है। कृष्ण, नील और कपोत-लेश्या के काले रंगों से होने वाली आदतें तेजो-लेश्या के प्रकाशमय लाल रंग से समाप्त होने लगती हैं। अचानक स्वभाव में परिवर्तन आता है।

पद्म-लेश्या का रंग पीला है। यह रंग बहुत शक्तिशाली है। यह गर्मी पैदा करने वाला रंग है। लाल रंग भी गर्मी पैदा करता है। उत्क्रमण की सारी प्रक्रिया गर्मी बढ़ाने की प्रक्रिया है। तेजो लेश्या में भी गर्मी बढ़ती है, पद्म लेश्या में भी गर्मी बढ़ती है और जब वह गर्मी पूरी मात्रा में बढ़ जाती है, चरम शिखर को छू लेती है और गर्मी बढ़ने का अवकाश नहीं रहता तब शुक्ल-लेश्या के द्वारा गर्मी का उपशमन करते हैं और तब निर्वाण घटित हो जाता है।

शारीरिक दृष्टि से पीला रंग मस्तिष्क और नाड़ी-संस्थान को बल देता है। जिस बच्चे की बुद्धि और स्मृति-शक्ति कमजोर हो, मस्तिष्क कमजोर हो, उसे यदि पीले रंग के कमरे में रखा जाए तो उसमें परिवर्तन आना शुरू हो जाता है। जो व्यक्ति दस मिनट तक मस्तिष्क में पीले रंग का ध्यान करता है, उसका बुद्धिबल शक्तिशाली होता जाता है। पीले रंग का जो मनोवैज्ञानिक प्रभाव है वह है–चित्त की प्रसन्नता।

आज रंग के विज्ञान में बहुत खोजें हुई हैं और हो रही हैं। रंग का मनोविज्ञान कहता है कि पीला रंग मन की प्रसन्नता का प्रतीक है। इससे मन की दुर्बलता मिटती है, आनन्द बढ़ता है। आगम कहते हैं–पीत-लेश्या से चित्त प्रशान्त होता है, शान्ति बढ़ती है और आनन्द बढ़ता है। दर्शन की शक्ति पीले रंग से विकसित होती है। दर्शन का अर्थ है–साक्षात्कार, अनुभव। इससे तर्क की शक्ति नहीं बढ़ती, साक्षात्कार की शक्ति बढ़ती है, अनुभव की शक्ति का विकास होता है।

पीले रंग की क्षमता है–मन को प्रसन्न करना, बुद्धि का विकास करना, दर्शन की शक्ति को बढ़ाना, मस्तिष्क और नाड़ी-संस्थान को सुदृढ़ करना, सक्रिय बनाना। यदि हम हृदय-केन्द्र या आनन्द केन्द्र पर पीले रंग का ध्यान करते हैं और मस्तिष्क तथा विशुद्धि-केन्द्र पर पीले रंग का ध्यान करते हैं तो अंधकार के रंगों द्वारा निर्मित आदतें विघटित होने लगती हैं और नई आदतें बननी प्रारम्भ हो जाती हैं। लेश्या–ध्यान

## यह है होली का संदेश...

अवसर आया मिलें जुलें हम
संगी साथी हंसें खिलें हम
जीवन रूपी इस उपवन में
खुशियां भी हैं सिर्फ नहीं गम
भूलें हम जीवन का क्लेश
यह है होली का सन्देश।

मन में हो या तन में चाहे
जहां कहीं हो घुटन हटाएं
जोड़ गुणा करना मैत्री का
द्वेष घृणा के भाव घटाएं
जल सा निर्मल हो परिवेश
यह है होली का सन्देश।

अहंकार का घेरा तोड़ें
समता के धागे से जोड़ें
चिंतन की धारा को मोड़ें
अमल करें हम खुद अपने पर
फिर औरों को दें उपदेश
यह है होली का सन्देश।

–तरुण सेठिया

का प्रयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। यह जैन साधना पद्धति का अपूर्व प्रयोग है। इस प्रयोग द्वारा आत्म-साक्षात्कार की झलक मिलती है।

अतः लेश्या कोरी जानने, देखने और रटने की बात नहीं है, यह साधना की पूरी प्रक्रिया है। यह समूचे व्यक्तित्व को बदलने की प्रक्रिया है। तीन काली लेश्याओं ने जिस व्यक्तित्व का निर्माण कर रखा है, उसे विघटित करने के लिए तीन प्रकाश लेश्याएं सक्षम हैं। वे नया व्यक्तित्व उभार देती हैं।

आज हम पवित्र रंगों का ध्यान करें। श्वेत, लाल और पीले रंग का ध्यान कर अपने पवित्र संकल्पों को अन्तर्जगत् तक पहुंचाकर हम ऐसी आराधना की पद्धति का विकास कर सकते हैं, जो लौकिक पद्धति से भी अधिक शक्तिशाली हो। इस पद्धति के दो लाभ हैं– मन की शान्ति और बुद्धि की निर्मलता। बुद्धि की निर्मलता से साधना का विकास भी होता है और बाह्य व्यक्तित्व का विकास भी होता है।

पुस्तक आभामण्डल से... ❐

# रंगों के असली महत्व को समझें

## राजेन्द्र खटेड़

मानव समाज में आदिकाल से ही पर्व और त्योहारों का महत्त्व रहा है। प्रारंभ से ही असभ्य आदिवासी जातियों से लेकर सभ्य एवं सुसंस्कृत लोगों तक–सभी में ही पर्वों व त्योहार का आयोजन होता रहा है। ये उत्सव व त्योहार जीवन में सरसता, माधुर्य व आनंद का संचार करते हैं। ये त्योहार हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं जिससे हम भावनात्मक रूप से जुड़े रहते हैं। कुछ त्योहारों का संबंध धर्म से है, कुछ का किसी ऐतिहासिक घटना से और कुछ का किसी विशेष सामाजिक आयोजन से संबंध है। इन त्योहारों का मूल कारण जो भी हो, किन्तु वास्तविकता यह है कि ये त्योहार आनंद, मंगल व एकात्मता का वातावरण उत्पन्न करते हैं।

पर्व-त्योहारों की शृंखला में होली का अपना विशिष्ट महत्त्व है। रंगों से जुड़ा यह त्योंहार बुराई के दमन और पवित्रता के विकास से जुड़ा है। रंग से आपूरित यह त्योहार जीवन को रंगीन बनाने की दिशा देता है। चूंकि मनुष्य का रंगों से इतना गहरा नाता है कि बेरंग दुनिया में वह किसी भी खुशी का एहसास नहीं कर सकता। इसी कारण से मनुष्य अपने हर पल को रंगीन बनाना चाहता है। रंग मनुष्य के जीवन को सुकून पहुंचाते हैं, स्वास्थ्य को संतुलित रखते हैं तथा जीवन को सकारात्मक दृष्टि देते हैं।

होली का जिक्र आते ही मानस पटल पर रंगों के विभिन्न दृश्य छा जाते हैं। होली त्योहार का यदि आध्यात्मिक दृष्टि से विश्लेषण किया जाये तो हम पाएंगे कि जीवन में आंतरिक गुणों के विकास एवं जीवन को अध्यात्म के रंग में रंग देने का अवसर है–यह होली। रंग हमारे व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करते हैं। वे व्यक्तित्व पर जितना प्रभाव डालते हैं, उतना प्रभाव कोई और नहीं डालता। रंग स्थूल व्यक्तित्व को भी प्रभावित करते हैं और सूक्ष्म व्यक्तित्व को भी प्रभावित करते हैं। वे तैजस्-शरीर और लेश्या–तंत्र को भी प्रभावित करते हैं। रंगों का अखंड साम्राज्य है। आगे-पीछे चारों ओर रंग ही रंग हैं। यदि हम रंगों की क्रियाओं और उनके मनोवैज्ञानिक प्रभावों को समझ लेते हैं तो व्यक्तित्व के रूपान्तरण में हमें बहुत बड़ा सहयोग मिल सकता है। वैज्ञानिकों के अनुसार भी हमारा जीवन-तंत्र रंगों के आधार पर चलता है। आज के मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अन्तर-मन को, अवचेतन और मस्तिष्क सभी को प्रभावित करने वाला है–रंग, जो हमारे समूचे व्यक्तित्व को बदल देता है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने ध्यान की प्रायोगिक पद्धति 'प्रेक्षाध्यान' के अन्तर्गत रंगों की महत्ता को विस्तार से उल्लेखित किया है। रंगों का ध्यान चाहे–प्रेक्षाध्यान हो या लेश्याध्यान, रंगों की महत्ता को दर्शाता एक प्रमुख बिन्दु है। भावों को निर्मल बनाने

का सबसे सरल उपाय है–रंगों का ध्यान करना। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपाय है। प्रशस्त रंगों का ध्यान भावों को निर्मल बनाने में उपयोगी होता है। लाल, पीला और सफेद--ये तीन रंग भाव-शुद्धि के कारण हैं। जब हम इन प्रशस्त रंगों का ध्यान करते हैं और उनसे तन्मयता प्राप्त करते हैं, तब हमारे भाव परिवर्तित हो जाते हैं। विचारने और साधने की जरूरत नहीं, सहज बदल जाते हैं।

जैसे रंग हम ग्रहण करते हैं वैसे ही हमारे भाव, आचार और व्यवहार बन जाते हैं। स्फटिक के सामने जैसा रंग आता है, वह वैसा ही दिखने लगता है। स्फटिक का अपना कोई रंग नहीं होता। ठीक उसी प्रकार आत्मा के परिणामों का भी अपना कोई रंग नहीं होता। जिस रंग के परमाणु सामने आते हैं, आत्मा के परिणाम भी वैसे ही हो जाते हैं। ये परिणाम ही हमारी भाव लेश्या है।

रंग चित्त को सबसे अधिक प्रभावित करता है। रंगों से हमारे शरीर, मन, आवेगों, कषायों आदि का बहुत बड़ा संबंध है। शारीरिक स्वास्थ्य और बीमारी, मन का संतुलन और असंतुलन, आवेगों में कमी और वृद्धि--ये सब इन प्रयत्नों पर निर्भर है कि हम किस प्रकार के रंगों का समायोजन करते हैं और किस प्रकार हम रंगों से अलगाव या संश्लेषण करते हैं। ध्यान के साथ रंगों का अति निकटता का संबंध है। विविध रंगों पर ध्यान सरलता से किया जा सकता है और विचारों को निर्मल कर भावनाओं को विशुद्ध बनाया जा सकता है, जिससे रोगों का निरोध होता है। उदाहरणतः–नीला रंग शरीर में कम होता है, तो क्रोध अधिक आता है, नीले रंग के ध्यान से इसकी पूर्ति हो जाने पर गुस्सा कम हो जाता है। श्वेत रंग की कमी होती है तो अशांति बढ़ती है, लाल रंग की कमी होने पर आलस्य और जड़ता पनपती है। पीले रंग की कमी होने पर ज्ञानतन्तु निष्क्रिय बन जाते हैं। रंगों का महत्त्व चिकित्सकीय भी है और भावधारा के परिष्कार के लिए भी है।

आधुनिकता और परिवर्तन के दौर के साथ जीवन में रंग भरने वाला यह त्योहार आज जीवन से रंग हरने का प्रतीक भी बनता जा रहा है। अतः आज अपेक्षा इस बात की है कि आत्मनिरीक्षण के साथ इस पर्व की वास्तविकता को पुनर्स्थापित किया जाये। रंगों की पावन परम्परा को अक्षुण्णता व दीर्घजीविता प्रदान की जाए जिससे मनुष्य नवसृजन और नवचेतना के पथ पर गतिमान हो सके। विज्ञान ने मनुष्य के आचार, विचार और व्यवहार पर रंगों के प्रभाव की पुष्टि की है। अतएव मनुष्य रंगों के इस त्योहार पर जीवन में अध्यात्म और पवित्रता के रंग भर कर त्योहार की सार्थकता को प्रमाणित करे।

होली के इस पावन पर्व के अवसर पर यह संकल्प करें कि हम अध्यात्म के पक्के रंग से खुद रंग जायें एवं कामना करें कि संपूर्ण मानव जाति भी खुशी एवं आनंद के साथ-साथ अपने जीवन में अध्यात्म के रंगों को भी भरने का प्रयास करे ताकि होली के ये रंग हमारे जीवन के ऊर्ध्वारोहण के रंग बन जाये। ❐

## महापुरुषों का स्वभाव

**विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।**
**यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।**

विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में क्षमा, सभा में वचन चातुर्य, युद्ध में पराक्रम, सुयश में अभिरुचि और शास्त्रों में व्यसन-ये गुण महापुरुषों में स्वभाव से ही होते हैं।

# अनेकान्त प्रिय आचार्य श्री भिक्षु

मुनि मदनकुमार

अनेकान्त चेतना या वीतराग चेतना के विकास से ही ऐसे आध्यात्मिक बलों का विकास किया जा सकता है। अनेकान्त तीसरा नेत्र है जिससे सत्य और संयम को उपलब्ध किया जा सकता है। आचार्य भिक्षु ने अनेकान्त को जाना, जीया और उसका प्रयोग किया। इस दृष्टि से वे परम भाग्यशाली महापुरुष थे। उनकी अनेकान्तप्रियता या अनेकान्तमयी दृष्टि आज विश्व के लिए आलोक स्तंभ बन रही है तथा युगबोध दे रही है।

आचार्य भिक्षु ने धर्म का अधिकार सबको दिया–चाहे वह सम्यक्त्वी हो या मिथ्यात्वी। उन्होंने कहा कि मिथ्यात्वी भी मोक्ष का देशाराधक हो सकता है और उसके सकाम निर्जरा हो सकती है। मिथ्यात्वी की भली करणी निरवद्य है और जिनाज्ञा में है। मिथ्यात्वी के संवर नहीं होता, इस दृष्टि से उसके प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान है, किन्तु उसके निर्जरा होती है, इस दृष्टि से उसके प्रत्याख्यान निर्मल प्रत्याख्यान है। आचार्य भिक्षु ने मिथ्यात्वी री करणी री चौपई में लिखा है–

- देस थकी तो आराधक कह्यो रे, पेहलें गुणठांणे ते किण न्याय रे।
  विरत नहीं छें तिणरें सवर्था रे, निरजरा लेखें कह्यो जिणराय रे।।
- पेहलें गुणठांणे विरत न नीपजें, तिण लेखे कह्यो दुपचखांण।
  पिण निरजरा लेखें पचखांण निरमला, उत्तम करणी बखांण।।

आचार्य भिक्षु के अनुसार मिथ्यात्वी व्यक्ति यदि सत्क्रिया करता है तो उसे धर्म होता है परन्तु कुछ लोगों की मान्यता सर्वथा इसके विपरीत है। उनके अनुसार मिथ्यात्वी व्यक्ति चाहे शील, सत्य और तप का आचरण क्यों न करता हो, पर वह सब धर्म का हेतु न होकर भव-बन्धन का हेतु ही होता है। आचार्य भिक्षु ने स्पष्ट लिखा है–

पेंहले गुणठांणे करणी करें, तिणरे हुवें छें निरजरा धर्म।
जो घणों घणों निरवद प्राकम करें, तो घणा घणा करे छें कर्म।।

आचार्य भिक्षु ने मिथ्यात्वी के कर्म का निरोध भी माना है। यह उनकी निर्मल दृष्टि का सफल निदर्शन है। इनके अनुसार मिथ्यात्वी के संवर धर्म नहीं होता है किन्तु कर्म का निरोध होता है। मिथ्यात्वी की जितनी सही श्रद्धा है, वह क्षायोपशमिक भाव है और निरवद्य है। उसे मिथ्यादृष्टि कहा है और वह कर्म निरोध करने वाली है। उन्होंने इन्द्रियवादी की चौपई में कहा है–

जिम जिम घटे छे उंधो सरधवों, तिम तिम घटे छे मिथ्यात हो।
उंधो घट्यां वधे सूंधो सरधवों, ते क्षयउपसम भाव साख्यात हो।।
ते क्षयउपसम भावनिरवद कह्यो, श्री जिणमुख सूं आप हो।
ते उजला लेखें निरवद कह्यो, वले रुकीया छें तिणसूं पाप हो।।

यह ध्रुव सत्य है कि सम्यक्त्व के बिना संवर नहीं होता और संवर के बिना मोक्ष नहीं होता। वस्तुतः सम्यक्त्व और संवर दोनों ही दुर्लभ हैं। जितने भी जीव संसार से मुक्त हुए हैं वे सम्यक्त्व और संवर धर्म की प्राप्ति से ही हुए है। मोक्षाराधना का आदि बिन्दु सम्यक्त्व ही है। उसके बिना संसार अनादि अनन्त बना रहता है। भव-भ्रमण को अनादि-सान्त बनाने का एक ही रास्ता है–सम्यक्त्व की प्राप्ति। उससे फिर संवर का मार्ग प्रशस्त होता है। आचार्य भिक्षु ने नव पदारथ में लिखा है–

जीव अजीव आलेख्यां बिनां, मिटें नहीं मन रो भर्म।
समकत आयां विण जीव नें, रुके नहीं आवतां कर्म।।

मिथ्यात्वी के संवर नहीं होता, पर निर्जरा हो सकती है। निर्जरा न हो तो वह मिथ्यात्वी से सम्यक्त्वी कैसे बनेगा? उसका संसार समुद्र से उद्धार कैसे होगा? निर्जरा धर्म के दो प्रकार हैं–सकाम और अकाम। आचार्यश्री भिक्षु ने कहा कि मिथ्यात्वी के सकाम और अकाम दोनों प्रकार की निर्जरा हो सकती है। मिथ्यात्वी के शुभ योग और शुभ लेश्या होती है, फिर निर्जरा धर्म क्यों न हो? तत्त्व चिन्तन में कहा गया है कि मोक्षार्थी के सकाम निर्जरा होती है, चाहे वह सम्यक्त्वी हो या मिथ्यात्वी। अन्य उद्देश्य से की जाने वाली या अपने आप होने वाली तपस्या अकाम होती है। सम्यक्त्वी की तरह मिथ्यात्वी के भी दोनों प्रकार की निर्जरा माननी चाहिए। आचार्यश्री भिक्षु ने लिखा है–

पाले सरागपणे साधूपणो रे, वले श्रावक रा वरत बार हो।
बाल तपसा ने अकाम निरजरा रे, यां सूं पामें सुर अवतार हो।।

चार प्रकार से जीव देवायुष्य बांधता है–(1) सराग संयम–राग युक्त संयम (2) संयमासंयम–श्रावकपन पालना (3) बाल तपस्या–मिथ्यात्वी की तपस्या और (4) अकाम निर्जरा–मोक्ष की इच्छा बिना की तपस्या। इस संदर्भ में दो बातें जाननी चाहिए–(1) ये चारों बोल निरवद्य हैं, अतः जिनाज्ञा में हैं। (2) अकाम निर्जरा को अलग से बताया गया है। अतः मिथ्यात्वियों की सकाम और अकाम दोनों प्रकार की निर्जरा होती है। अभव्य के केवल अकाम निर्जरा होती है। ये दोनों प्रकार की निर्जरा निर्जरा तत्त्व के अन्तर्गत है।

शुभ योग आश्रव भी है और निर्जरा भी है। शुभ योग से पुण्य का बंध होता है, अतः निर्जरा है। पुण्य निर्जरा का सहचर है। कोरा पुण्य कदापि नहीं बंधता है। चौदहवें गुणस्थान में अबंध अवस्था है, अतः कोरी निर्जरा होती है। निर्जरा के साथ पुण्य-बंध का संबंध है। पुण्य की इच्छा न करने पर भी वह बंधता है, उसे रोकने का सामर्थ्य नहीं है। पुण्य की करणी और निर्जरा की करणी निरवद्य होने से जिनाज्ञा में है। दोनों का हेतु शुभ योग है। आचार्यश्री भिक्षु पुण्य तत्त्व की मीमांसा करते हुए लिखते हैं–

पुन नीपजे तिण करणी मझे, तिहां निरजरा निश्चे जांण।
तिण करणी री छै जिण आगना, जिण मांहे संक म आंण।।
वेदनी आउखो नांम छैरे, ऐ च्यारूंई कर्म पुन पाप हो।
तिण में पुन री करणी निरवद कही रे, तिणरी आज्ञा दे जिन आप हो।।

पुण्य बंध को स्थानांग में नौ भेदों में विभक्त किया गया है। ये नौ कारण हैं जिनसे पुण्य का बंध होता है। ये नौ प्रकार की प्रवृत्ति निरवद्य है तथा जिनाज्ञा में है। निर्जरा के साथ ही पुण्य का संबंध है जिसे सूत्र न्याय से सिद्ध किया जा सकता है।

- जैसे पंच परमेष्ठी को वंदना करने से नीच गोत्र का क्षय होता है तथा उच्च गोत्र का बंध होता है। नीच गोत्र का क्षय निर्जरा है तथा उच्च गोत्र का बंध पुण्य है। वन्दना की प्रवृत्ति जिनाज्ञा में है।
- धर्म कथा करने से कल्याणकारी कर्म-पुण्य का बंध होता है तथा निर्जरा धर्म की प्राप्ति होती है। धर्म कथा निरवद्य योग है तथा जिनाज्ञा में है।
- वैयावृत्य करने से तीर्थंकर नामकर्म-पुण्य का बंध होता है तथा निर्जरा धर्म की प्राप्ति होती है। वैयावृत्य शुभ योग है तथा जिनाज्ञा में है।

ये सारे प्रसंग उत्तराध्ययन सूत्र के 29वें अध्ययन में उपलब्ध हैं। इसी तरह ज्ञातासूत्र में कहा गया है कि बीस बोलों की आराधना करने से प्रचुर कर्म निर्जरा होती है तथा साथ में तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है। आचार्यश्री भिक्षु ने लिखा है–

**बीसां बोलां करेनें जीवड़ो रे, करमां रो कोड़ खपाय हो।**
**जब बांधे तीर्थंकर नाम कर्म नें रे, गिनाता आठमा अधेन मांय हो।।**

अशुभ योग से पुण्य का बंध नहीं होता है। असंयति के पोषण से पुण्य का बंध नहीं होता है। पुण्य की कामना करने से पुण्य का बंध नहीं होता है। शुभ योग और संयति दान से ही पुण्य का बंध होता है। पुण्य वांछनीय नहीं है, अतः हेय है।

आचार्यश्री भिक्षु लिखते हैं–

**केई साध वाजे जैन रा, त्यां दीधी जिण मारग ने पूठ।**
**पुन के कुपातर ने दीयां, त्यांरी गई अभिंतर फूट।।**
**पुन तणी बंछ कींया, लागे छे एकंत पाप हो।**
**तिण सूं दुःख पामें संसार में, बधतो जाये सोग संताप हो।।**

आत्मज्ञानी की दृष्टि आत्म सुख पर रहती है, पौद्गलिक सुख पर नहीं। शाश्वत सुख पर रहती है, क्षणिक सुख पर नहीं। पुण्य के सुख शाश्वत नहीं है। क्षणभंगुर है। उनमें कोई विशेषता या महत्ता नहीं है। केवल मोह कर्म के वशवर्ती जीव इन पौद्गलिक सुखों में लिपटे या रचे-पचे रहते हैं। आचार्य भिक्षु कहते हैं–

**पुन तणा सुख कारमा, तिण में कला म जाणो काय।**
**मोह कर्म वस जीवड़ा, तिण सुख में रह्या लपटाय।।**

शुभ योग या बारह प्रकारं की तपस्या को निर्जरा की करनी कहना चाहिए तथा उससे होने वाली आत्मा की आंशिक उज्ज्वलता को निर्जरा कहना चाहिए। ये दोनों ही आदरणीय और भाव जीव हैं। निर्जरा उज्ज्वलता की दृष्टि से निरवद्य है तथा निर्जरा की करनी उज्ज्वलता और करनी दोनों दृष्टियों से निरवद्य है। निर्जरा में कर्म टूटकर आत्मा से विलग हो जाते हैं। यह आत्मोदय की प्रक्रिया है। आचार्यश्री भिक्षु लिखते हैं–

**निरजरा में निरजरा री करणी, अे दोनूं जीव नें आदरणी।**
**ए दोनूं छै भाव जीव, तूटा नैं तूटे कर्म अजीव।।**

क्रमशः ...

# नारी की सोच का दायरा कितना ऊंचा?

वीणा बैद

मन्दिर में जिसकी प्रतिमा के आगे सिर झुकाया उसी मन्दिर की चौखट पर जीती जागती औरत पर उसे धौंस जमाते हुए देखा; जिसे देवी मानकर उसने सम्मान दिया उसी की इज्जत को उसके हाथों तार-तार होते हुए देखा, जिसकी ममता ने उसे जीवन दिया उसी कोख को जीवन की भीख मांगने पर मजबूर किया। जिसका दूध पीकर वो शेर बना उसी पर अपनी ताकत आजमा कर उसे खून के आंसू रुलाते देखा।

हाय! औरत तेरी यही कहानी!

भारत के इस पुरुषप्रधान समाज में आज भी एक लड़की को सम्मान की जिन्दगी पाने के लिए जिस भाव एवं संघर्ष के दौर से गुजरना पड़ता है वो ज्यादातर लड़कियों की जिन्दगी को ही निगल जाता है। उनके विकास की संभावनाओं के साथ उनकी पूर्ण शक्ति को ही तोड़कर खत्म कर दिया जाता है। अनेक उपलब्धियों के साथ इक्कीसवीं सदी में प्रवेश के बावजूद भारतीय उदार सोच भारत को रूढिवाद की बेड़ियों से मुक्त नहीं करा पाई। महिलाओं से जुड़ी असीम संवेदनाओं से आह! निकलती रही... ऐसा क्या गुनाह किया.....जो लुट गए? फिर भी खामोशी गहराती रही।

परन्तु अब तसवीर बदल रही है। राख के ढेर तले दबी चिनगारी की तरह सुलगती खामोशियां एक नए अन्दाज में अपने प्रचण्ड तेज के साथ प्रकट हो रही हैं, क्योंकि अब नारी की सोच का दायरा अपनी जाति के सम्मान की झिलमिल चुनर ओढ़े घर की देहरी से लेकर आकाश की अनन्त ऊंचाइयों को नाप रहा है।

इस नव संकल्प के साथ भारतीय संस्कृति की धुरी नारी के बदलते स्वप्न को देखकर भौचक्की है दुनिया, परन्तु दुनिया के कड़वे सच से सामना होने के बाद नारी को कुछ निश्चय के साथ आगे बढ़ना ही था। उसे मालूम है कि भारत की कुल आबादी लगभग एक अरब बाईस करोड़ में उसकी जाति की संख्या लगभग उनसठ करोड़ ही है। एक हजार लड़कों के पीछे मात्र नौ सौ लड़कियां हैं। उसे इस बात का गहरा दुःख है कि पिछले दो दशकों में एक करोड़ के लगभग कन्या भ्रूणों की हत्या हुई, जो एक करोड़ बीस लाख कन्याएं पैदा भी हुईं तो उनमें से दस लाख ने तो अपना पहला जन्मदिन नहीं देखा। इतना ही नहीं, न जाने कितनी 'निर्भया' को दरिंदगी, यौन शोषण व घरेलू हिंसा जैसे अमानवीय अत्याचार झेलने पड़ रहे हैं।

एक ओर यूनाइटेड नेशन्स वर्ल्ड पॉपुलेशन फण्ड ने भारत को सबसे ज्यादा असंतुलित लिंगानुपात वाला देश माना है दूसरी ओर डेमोग्राफर्स ने ये चेतावनी दी है कि लिंगानुपात का यही स्तर रहा तो आने वाले बीस सालों में स्थिति और भी गंभीर हो जाएगी। ऐसे गंभीर हालात में 'नारी' अब नहीं जागी तो कब जागेगी?

जिम्मेदारियों का एहसास तो उसे सदा ही रहा, परन्तु कर्तव्यों की वेदी पर अधिकारों की आहुति के बावजूद प्राप्त तिरस्कार ने उसके नजरिए को एक विस्मयकारी मोड़ दिया है। वो अच्छी तरह समझ चुकी है कि आत्म-सम्मान व स्वाभिमान यदि पाना है तो अपनी शक्तियों का, अपनी खूबियों का, अपने अस्तित्व का पहले खुद सम्मान करना सीखना है। नारी-नारी में सोए आत्म सम्मान को जगाकर उसके गौरव को अक्षुण्ण रखना है। एक औरत को दूसरी औरत का हमदर्द बन उसके आत्मविश्वास को परवान

चढ़ाना है। टांगें तो बहुत खींची हैं एक-दूसरे की, अब तो हाथ से हाथ मिलाकर हर दलदल से निकल जाना है। नारी के अस्तित्व की अस्मिता का मखौल उड़ाने वालों के नापाक इरादों को अब मिलकर नाकाम करना है।

जिम्मेदारी यहीं खत्म नहीं होती। नारी का 'ब्रह्मास्त्र' अभी उसके हाथ में है। सभी जानते हैं इस सृष्टि का मूलाधार नारी ही है। मातृत्व की गरिमा और महिमा उसके व्यक्तित्व में ही सिमटी है और एक बच्चा सबसे ज्यादा अपनी मां के करीब होता है। वो भली-भांति जानती है कि उसके संस्कारों से पोषित बालक उत्कृष्ट समाज व्यवस्था को पुष्ट करता है जिसका विकास गर्भ से ही शुरू हो जाता है। इसीलिए भारत की मातृ शक्ति बड़ी जागरूकता के साथ अपनी सन्तान की स्कूली शिक्षा के साथ-साथ उसके नैतिक उत्थान पर विशेष ध्यान दे रही है। उसके भीतर स्वार्थ से परे मानव मात्र के हित चिन्तन का दायित्व बोध जगा रही है, उसमें आध्यात्मिक रुझान जगाकर उसकी वृत्तियों का शोधन कर रही है और सबसे बड़ी बात स्वयं संयम की मजबूत शिला पर खड़ी होकर उसे नारी जाति का सम्मान करना सिखा रही है, क्योंकि आज सवाल सिर्फ उसका नहीं है अपितु समग्र नारी समाज की अस्मिता से जुड़ा है। मां और बच्चे के बीच जुड़ा ये सृजनात्मक सेतुबंध रिश्तों की मिठास को बढ़ाते हुए मातृत्व के गौरव को संवर्धित करेगा। साथ ही सद्गुरु शरण, सत्साहित्य, स्वाध्याय व सात्विक विचार रमण बालक के जीवन में नव ऊर्जा का स्पन्दन भर शुभ भविष्य की आस और विश्वास को पंख लगा रहे हैं। एक सुशील संतान मां की सबसे बड़ी ताकत होती है। जब वो इसकी प्रतिध्वनि बने तो उसे और किसी सशक्तीकरण की न अपेक्षा है और न ही आवश्यकता है। संसार स्वयं उसके कदमों में सिर झुकाएगा हृदय की गहराइयों से।

माना कि राह सुगम नहीं है और पथ बहुत लम्बा है किन्तु भय के अंधेरे में रहकर भी उसे क्या मिला? लोग महिला सशक्तीकरण की बात करते हैं, किन्तु जो स्वयं शक्ति संपन्न है उसका कैसा सशक्तीकरण? शक्ति तो आत्मा के भीतर से आती है और वो जाग चुकी है। जो अब तक दूसरों के इशारे पर चलती थी वो आज अपनी स्वयं की सोच के साथ एकजुट होकर अपनी दोयम दर्जे की नागरिकता को ललकार रही है। यह लड़ाई मात्र पुरुष और महिला के बीच की नहीं है, यह लड़ाई मात्र नारी अस्तित्व एवं अधिकारों की भी नहीं है, यह तो भारत के संतुलित विकास की अनन्त संभावनाओं से भी जुड़ी है। जिस दिन यह तसवीर पूरी बन कर तैयार होगी, उस दिन भारत विकासशील देशों की कतार में नहीं अपितु विकसित राष्ट्र की श्रेणी में सगर्व खड़ा नजर आएगा।

● इस दिशा में साहस के साथ उसके बढ़ते कदम किसी सशक्त क्रान्ति का आगाज कर रहे हैं। मानव मन के प्रदूषण को दूर करने के लिए, औरत के प्रति सकारात्मक सोच को विकसित करने की इस मुहिम में उसके परिवार के साथ-साथ प्रशासन, मीडिया एवं समाज का चिन्तनशील वर्ग पूरी तरह उसके साथ है।

● भारत की कुल आबादी की पैंसठ प्रतिशत जनसंख्या पैंतीस वर्ष के आयु वर्ग से नीचे है अर्थात् एक विशाल युवा शक्ति भारत के पास है और प्रचार माध्यमों की पहुंच भारत के कोने-कोने में है। क्या ये युवा वर्ग अपने देश की इस अक्षय असीम शक्ति को उजागर कर विश्व पटल पर भारत की आध्यात्मिक सांस्कृतिक सौरभ के साथ उसके गौरव को अभिमण्डित करने में अपनी शक्ति नहीं लगाएगा?

● नजर बदल रही है–नजरिया बदल रहा है, आंसुओं के सिसकते कारवां को पीछे छोड़कर, अन्तस की गहराइयों पर तन-मन खिल रहे हैं, सिन्दूरी भावनाओं के छोर पर सूरज उग रहे हैं। उगती किरणों की आलोक ऊर्मियों में उज्ज्वलता का आंगन फैल रहा है। निकट आते जा रहे हैं दूर के संकल्प भी। सांसों में तरंगित गीत के बोल कह रहे हैं...

*आज फिर जीने की तमन्ना है...* ❐

# तेरापंथ शासन का कार्यकारी हस्ताक्षर महासभा

## महासभा का इतिहास

लेखक
मंत्रीमुनि मुनि सुमेरमल, लाडनूं

संपादक
मुनि उदितकुमार

महासभा का सौ साल का अपना इतिहास है। इसने संघर्षों के बीच अपनी पहचान बनाई है। सेवा, संगठन, एकता के साथ संघीय और सामाजिक भूमिका से जुड़े अनेक दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन किया है। इसने समाज के अनेक सेवाभावी, दायित्वशील, संघहितैषी कर्मठ कार्यकर्ताओं को अपने साथ जोड़ा है। उम्र से और कार्यकारी कद से ऊंची महासभा तेरापंथ संघ और समाज का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। इसका शैशव संघर्षभरा है, यौवन क्रांतिकारी है, प्रौढ़ता योजनाबद्ध है और वर्तमान तेजस्विता से दीपित है। इतिहास बन जाना एक बात है पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसके कर्तृत्व की स्वीकृति होते रहना दूसरी बात है। अतः जैन भारती 2013 फरवरी से महासभा के अतीत और वर्तमान के अनुभवों के साथ 'कल, आज और कल' का पूरा इतिवृत्त पाठकों तक क्रमशः पहुंचाने की शुरुआत कर रही है।

तेरापंथ धर्मसंघ अपने-आप में एक सुदृढ़, सुव्यवस्थित, मर्यादित एवं अनुशासित धर्म संगठन है। यह कहना शायद अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि इसे एक परिधि से बाहर निकालने में हवा का काम किया है शिरोमणि संस्था जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा ने। महासभा एक समसामयिक उद्देश्य की संपूर्ति के लिए बनी। लोगों में विश्वास जमा, कार्य विस्तार होता गया, अनेक उतार-चढ़ावों, संघर्षों और अवरोधों को झेलते हुए अपनी मूल चमक व लक्ष्य को लेकर उसी गरिमा एवं महिमा के साथ आज भी सीना ताने खड़ी है। सचमुच! तेरापंथ शासन का कार्यकारी हस्ताक्षर है महासभा।

### तेरापंथ

तेरापंथ धर्मसंघ आचार्य भिक्षु द्वारा स्थापित अध्यात्म प्रधान संस्थान है। चतुर्विध धर्मसंघ के साधु-साध्वियों व श्रावक-श्राविकाओं की चर्या ही इसकी प्राणवत्ता है। तेरापंथ का अपना संगठन है, अपना अनुशासन है, अपनी मर्यादा है। इनके प्रति संघ के सभी सदस्य सर्वात्मना समर्पित हैं। पूरे जैन समाज में संख्या की दृष्टि से सबसे कम होते हुए भी आज नाम व काम की दृष्टि से बेजोड़ है। यह सब सुदृढ़ संगठन का ही परिणाम है। आचार्य भिक्षु से लेकर आज तक सभी आचार्यों ने साधु-साध्वियों के लिए विविधमुखी मर्यादाओं का निर्माण किया। साधु-साध्वियां प्रसन्नमना अपने-अपने कार्य में स्वयं को नियोजित किए रहते हैं।

श्रावक समाज का अलग से कोई संगठन नहीं था। गांव-गांव में ओसवाल पंचायतें थीं। छुटपुट कार्य करना होता तो इन पंचायतों के माध्यम से हो जाता था। कई जगह व्यक्तिगत स्तर पर भी कार्य संपादित कर

लिया जाता था। कई प्रभावशाली श्रावक समय-समय पर आने वाली बाधाओं, कठिनाइयों एवं अवरोधों को अपने प्रभाव से दूर कर दिया करते थे। उन प्रभावशाली व्यक्तियों के साथ स्थानीय/क्षेत्रीय/अंचलीय स्तर पर लोग कंधे से कंधा मिलाकर उनके साथ जुड़ जाते थे।

आचार्य भिक्षु के समय सिरियारी (पाली–राजस्थान) में मुनि हेमराजजी की दीक्षा में लोगों ने विघ्न उपस्थित किया। पंच लोगों ने मिलकर ठकुरानी को सारी स्थिति समझाई, वस्तुस्थिति की अवगति मिलते ही दीक्षा की अनुमति मिल गई। आचार्यश्री भारमलजी स्वामी को उदयपुर प्रवास के लिए निषेध होने पर वहां के श्रावक केसरजी भंडारी ने व्यक्तिगत स्तर पर महाराणा को सारी जानकारी दी। सचाई जान लेने के बाद महाराणा ने स्वयं पूज्य आचार्यश्री को पत्र लिखकर वापस उदयपुर पधारने का निवेदन करवाया। आचार्यश्री तो नहीं पधारे, पर मुनिश्री हेमराजजी स्वामी आदि कई संतों को वहां भेजा। संघ की खूब प्रभावना हुई।

विरोधियों की बातों में आकर जोधपुर महाराजा तख्तसिंहजी ने जयाचार्य के लिए सम्मन जारी किया। श्री बादरमलजी भंडारी इस संदर्भ में जोधपुर महाराजा से मिले। सही स्थिति के सामने आते ही महाराजा ने सम्मन को रद्द कर दिया।

न जाने कितने ऐसे प्रसंग हैं जिनसे यह पता चलता है कि तत्कालीन श्रावक अपने स्तर पर उनका समाधान करते गए। उनका तत्कालीन राजाओं से संपर्क था, उन पर व्यक्तिगत प्रभाव था। उस संपर्क व प्रभाव का उपयोग यदा–कदा संघीय अपेक्षा एवं प्रभावना के कार्यों में करते रहे।

## महासभा स्थापना का बीज

विक्रम संवत् 1970 (सन् 1913) में आचार्यश्री कालूगणी लाडनूं में विराज रहे थे। वहां मुंबई से सुश्रावक मगनभाई नगीनभाई वकीलवाला का पत्र आया। उसमें लिखा था कि बंबई के 'मुंबई समाचार' नामक गुजराती पत्र में खबर छपी है कि युनाइटेड प्रोविंस (वर्तमान यू. पी.) की लेजिस्लेटिव काउंसिल में एक बिल पेश हुआ है जिसमें प्रस्ताव है कि नाबालिग साधुओं को कोर्ट में रजिस्ट्रेशन कराना होगा।

यह पत्र जब मुनि मगनलालजी स्वामी को मालूम किया गया तब वहां सेवा में श्रीचंदजी गधैया (सरदारशहर), जीवनमलजी बैंगानी (लाडनूं) आदि कुछ श्रावक बैठे थे। मगनलालजी स्वामी ने वह पत्र आचार्यश्री कालूगणी को ले जाकर मालूम किया तब आचार्य कालूगणी ने फरमाया–'हम न कोर्ट में जाएंगे और न रजिस्ट्रेशन कराएंगे। ऐसा मौका आया तो आत्मा के कारज सारेंगे।' श्रीचंदजी गधैया को गुरु के श्रीमुख से यह सुन कर बहुत पीड़ा हुई। श्रीचंदजी ने मुनिश्री मगनलालजी स्वामी से मंत्रणा की और मांगलिक सुनकर सरदारशहर रवाना हो गए।

सरदारशहर आकर सबसे पहले अपने पुत्र वृद्धिचंद गधैया, मित्र रावतमलजी सेठिया और वृद्धिचंदजी गोठी को बुला कर सारी बात कही और कहा–'हमें ऐसा प्रयास करना है कि यह कानून किसी भी हालत में नहीं बने। यदि बने भी तो अपने साधुओं पर लागू नहीं होना चाहिए।'

## श्री कोठारी का जुड़ाव

युनाइटेड प्रोविंस की लेजिस्लेटिव काउंसिल के मुख्यालय इलाहाबाद के इस नाबालिग रजिस्ट्रेशन बिल के संदर्भ में यह अपेक्षा सामने आई कि कोई अच्छी अंग्रेजी जानने वाले सहयोगी की जरूरत है। सरदारशहर में रावतमलजी सेठिया ने सुझाव दिया कि कलकत्ता में केशरीचंदजी कोठारी अंग्रेजी बोलने में बहुत निपुण हैं तथा अंग्रेजों के साथ उनके अच्छे संबंध भी हैं। वे अगर इस काम में हमारे साथ हो जाएं तो कार्य काफी आसान हो सकता है। कोठारीजी से इस संदर्भ में बात करने पर उन्होंने स्पष्ट इनकार कर दिया। इसका मुख्य कारण इन वर्षों में समाज से संपर्क का अभाव व देनदारी थी। सेठियाजी व गणेशदासजी गधैया उनसे मिले।

गधैयाजी के समझाने से कोठारीजी पूज्य कालूगणी के दर्शनार्थ तैयार हो गए, पर कुछ समय

बाद दर्शन करने की इच्छा जताई। इसका कारण पूछने पर बताया कि उनके अभी व्यापार में नुकसान हुआ है। लोगों का काफी रुपया चुकाना है। ऐसी हालत में कलकत्ता से चले जाने से उनकी बदनामी होगी। लोग कहेंगे कि रुपये देने के डर से केशरीचंद कलकत्ता छोड़ चला गया है। अतः रकम चुकाने के बाद ही वे जाएंगे। गणेशदासजी गधैया रावतमलजी गधैया और रावतमलजी सेठिया के साथ वापस अपनी गद्दी आए और एक ब्लैंक चेक सही कर रावतमलजी को दिया और कहा –'केशरीचंदजी से कह दें कि अपने धर्मसंघ का काम है, गुरुओं का काम है–जाना तो उन्हें अवश्य होगा। फिलहाल उन्हें जितनी रकम चुकानी है, इस चेक से मेरे खाते से ले लें और बाजार में चुका दें। मुझे रुपयों की कोई जल्दी नहीं है। वे जब चाहें धीरे-धीरे वापस कर सकते हैं।' केशरीचंदजी ने बड़े अनमनेपन से वह चेक लिया और पौने दो लाख रुपये श्रीचंद गणेशदास के खाते से उठाए। लोगों को रुपया चुका कर गुरु-दर्शन को रवाना हुए।

केशरीचंदजी कोठारी ने राजलदेसर में आचार्य कालूगणी के दर्शन किए। वहां मगनलालजी स्वामी से उनका विचार-विमर्श हुआ। राजलदेसर से सरदारशहर आकर श्रीचंदजी गधैया से मिले। वहां सारी योजना तय हुई। निश्चित हुआ कि पहले कोई अच्छे सॉलिसिटर से सलाह ली जाए। यह कार्य केशरीचंदजी के जिम्मे किया गया। केशरीचंदजी कलकत्ता आए, वहां के प्रसिद्ध सॉलिसिटर आर डीनम कंपनी के प्रमुख मि. विलियम साहब से मंत्रणा की, कई बैठकें हुईं।

## परिस्थितियों में बदलाव

परिस्थितियों में धीमे-धीमे बदलाव आना शुरू हो गया। ईस्ट इंडिया कंपनी के नाम पर व्यापार करने आए अंग्रेज भारत की राजनीतिक व प्रशासनिक व्यवस्था में अपना प्रभाव जमाने लगे। पूरे देश पर उनका प्रभुत्व स्थापित होने के बाद व्यवस्थागत परिवर्तन होने लगा। व्यक्तिगत प्रभाव का क्षेत्र सिमटकर संस्थागत हो गया। व्यक्तिगत राय, चिंतन व अपील को सही होने व उसे ठीक समझने के बावजूद उसे व्यक्तिगत ही माना जाने लगा। उस समय संस्था, सोसायटी व समूह की बात को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। राज्यों में तो काम निकलता रहा, पर अंग्रेजों के वहां दिक्कत आने लगी।

## संस्था की जरूरत

मुजफ्फरनगर के लाला श्री सुखवीरसिंह सिन्हा ने इलाहाबाद में युनाइटेड प्रोविंस में जो नाबालिग साधुओं के रजिस्ट्रेशन (पंजीकरण) का बिल पेश किया, उस पर विचारार्थ 15 सितंबर 1913 को एक सेलेक्ट कमेटी बना दी गई। समिति में सात सदस्य थे, समिति ने एक परिपत्र जारी किया–'क्यों नहीं बाल दीक्षा बंद कर दी जाए।' उस परिपत्र में बाल दीक्षा से होने वाली हानियों का विवेचन था। इस संदर्भ में श्रावक मंथर गति से कार्य कर रहे थे, पर अब इसके विरोध में और आगे आए।

इस समाचार ने कलकत्ता जैन समाज में एक हलचल पैदा कर दी। हलचल तो अन्यत्र भी हुई होगी, किन्तु गुजरात, महाराष्ट्र, मालवा (म. प्र.), राजपूताना (राजस्थान) दूर होने के कारण समाचार का सीधा असर नहीं पड़ा था वहां कोई प्रतिक्रिया हुई हो तो उसका ब्योरा उपलब्ध नहीं है। कलकत्ता इलाहाबाद के नजदीक भी था और वहां प्रबुद्ध जैन समाज का बड़ा समूह भी था।

पुनः आर डीनम कंपनी के प्रमुख मि. विलियम से मिले। विलियम ने स्पष्ट कहा–'सरकार के साथ लड़ाई लड़ने के लिए एक संस्था का होना अत्यंत आवश्यक है। यों व्यक्तिगत तौर पर कितना भी विरोध अथवा कितनी भी चिट्ठियां दी जाएंगी तो भी सरकार ध्यान नहीं देगी। एक सभा या संस्था बनाकर उसे सरकार में रजिस्टर करा कर उसके माध्यम से ही आगे कार्यवाही करनी चाहिए।

## संस्था के प्रति सशंक दृष्टिकोण

वरिष्ठ सॉलिसिटर विलियम के सुझावानुसार वरिष्ठ लोग आपस में मिले और विचार-विमर्श करने

लगे। चूंकि यह स्वाभाविक है कि हर नई प्रवृत्ति सशंक रहती है। लोग संस्था बनाने में विकृतियों की संभावना देख रहे थे। उनका मानना था–संस्था बनेगी तो आपसी लड़ाइयां व संघर्ष की नौबत आ सकती है। सबको पूछना भी होगा। एक के पास जाने वाली बात दस के पास जाएगी। तर्क-वितर्क बढ़ेंगे। परंपरा से प्राप्त गरिमा में गिरावट आएगी। उस समय ओसवाल पंचायतों में ऐसा हो भी रहा था। कहीं-कहीं 'तड़' या गुटबंदी-पार्टीबाजी चल रही थी। इन स्थितियों से लोग तंग हो रहे थे। वे कोई नई शुरुआत व पहल करने के मूड में नहीं थे।

संस्था बनाने के संदर्भ में वरिष्ठ श्रावक रूपचंदजी सेठिया के विचार जानने हेतु श्रीचंदजी गधैया ने अपने मित्र रावतमलजी सेठिया को सुजानगढ़ भेजा। उन्हें सारी बात बताई। रूपचंदजी ने कहा–'यह कार्य जागरूकतापूर्वक करना है। भविष्य में ऐसी संस्था साधुओं पर हावी न हो जाए, जैसा कि अन्य जगहों/समुदायों में ऐसा हो रहा है।' सरदारशहर आकर रावतमलजी ने गधैयाजी को सारी बात बताई। गधैयाजी का चिन्तन था कि अब संस्था का निर्माण अपरिहार्य है। वे चाहते थे- यह संस्था कलकत्ता में बने। वहां समाज के वरिष्ठ लोग ज्यादा रहते हैं। बाद में रावतमलजी कलकत्ता गए तो गधैयाजी ने यह बात कलकत्ता वालों को कहलवाई। इससे कलकत्ता में एक सुखद हलचल प्रारंभ हो गई।

## संयुक्त मीटिंग

सर्वप्रथम श्वेताम्बर मूर्तिपूजक व स्थानकवासी संप्रदायों के साथ मिलकर इस बिल का विरोध करने का विचार था। इसलिए एक संयुक्त मीटिंग भी कलकत्ता में हुई, जिसमें रायबहादुर मुकीम श्री बद्रीदासजी को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया और उनकी देख-रेख में समस्त कार्य करना निश्चित हुआ। इसमें वैसे सभी समुदायों के लोग उपस्थित हुए, पर अधिक संख्या तेरापंथी लोगों की रही। इस मीटिंग में उस बिल के बारे में चिंतन किया गया।

यह मीटिंग 17 अक्टूबर 1913 (कार्तिक कृष्णा 2, सं. 1970) शुक्रवार को रात्रि में मारवाड़ी चेम्बर ऑफ कामर्स के हॉल में हुई। उस समय चेम्बर के अध्यक्ष चूरू के श्री तोलारामजी सुराणा थे। चेम्बर का हॉल व कार्यालय बड़ा बाजार में पारख कोठी के तीसरे तल्ले पर था।

## कमेटी का गठन

इस बिल के संदर्भ में कार्य-निष्पादन हेतु तेरापंथी लोगों की एक तेरह सदस्यीय कमेटी का गठन हुआ। इसमें अन्य जैन समुदायों के लोगों को भी जोड़ा जाना था।

## तेरापंथी सभा का गठन

सभी समुदायों के साथ हुई मीटिंग के बाद ग्यारहवें दिन मारवाड़ी चेम्बर ऑफ कॉमर्स हॉल में मात्र तेरापंथी लोगों ने पुनः जनरल मीटिंग की। पहले जिस कमेटी का गठन हुआ था तथा कार्य करने का जो प्रारूप तथा प्रक्रिया निर्धारित की थी, उसके बारे में गहन चिन्तन-मन्थन चला। सभी समुदायों की सम्मि लित रूप से कार्यवाही निभती नहीं देखकर केशरीचंदजी कोठारी ने दृढ़ स्वर से केवल तेरापंथी संप्रदाय की ओर से कार्यवाही करने का विचार रखा।

कोठारीजी के विचार को समाज के लोगों का व्यापक समर्थन मिला। उसी का परिणाम था कि 'जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, कलकत्ता' का गठन हुआ। तेरापंथी सभा की स्थापना का दिन था–कार्तिक कृष्णा 14, सं. 1970, तदनुसार 28 अक्टूबर 1913, मंगलवार। (क्रमशः)

❐

**निर्णय सही है तो दिशा कभी गलत नहीं होगी।**

# ऐसा होगा कलयुग...

*जब पाण्डव अपने दिन अज्ञातवास में बिता रहे थे तब एक दिन वे शिकार खेलने निकले। रास्ते में एक जगह भीम को प्यास लग गई। वे पानी खोजते हुए दूर स्थित एक सरोवर तक आ पहुंचे। उन्होंने देखा कि वहां एक धर्मशाला भी बनी हुई है जिसमें तीन कमरे थे। एक कमरे में एक विचित्र भैंसा बंधा हुआ था जो दोनों तरफ से चारा खा रहा था। दूसरे कमरे में एक हंस था जिसे कौवे चोंच मार-मार कर घायल किए जा रहे थे। तीसरे में मिट्टी के बर्तन रखे थे जो अकारण आपस में टकरा रहे थे और फूट रहे थे। भीम चकित हो गए और बिना पानी पीए हीं लौट आए। आकर उन्होंने विचित्र वृत्तान्त युधिष्ठिर को सुनाया।*

*युधिष्ठिर ने शंका का निवारण करते हुए कहा–'तुम कलयुग को देखकर आए हो। कलियुग में ऐसे ही अधिकारी होंगे जो वेतन भी लेंगे और रिश्वत भी। दोनों और से खाने वाला भैंसा इसी का प्रतीक है। हंस सत्पुरुष है जिसे कलयुग में दुर्जन नोंच-नोंच कर खाएंगे और यह पीड़ा वह सहन करेगा। एक ही कुम्हार के परस्पर टकराकर टूटने वाले बर्तन वास्तव में एक ही पिता के परस्पर लड़कर मिटने वाले भाई हैं।'*

*भीम 'कलयुग' का यह प्रकोप सुनकर हतप्रभ रह गए।*

---


**फार्म-4 (नियम 8 देखिए)**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | प्रकाशन स्थान | : | गंगाशहर, बीकानेर |
| 2. | प्रकाशन अवधि | : | मासिक |
| 3. | मुद्रक का नाम | : | दीपचंद सांखला |
| | क्या भारतीय नागरिक है | : | हां |
| | पता | : | सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003 |
| 4. | प्रकाशक का नाम | : | बिनोदकुमार चोरड़िया |
| | क्या भारतीय नागरिक है | : | हां |
| | पता | : | जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा शाखा कार्यालय : तेरापंथ भवन गंगाशहर 334401 (बीकानेर) राजस्थान |
| 5. | संपादक का नाम | : | डॉ. शान्ता जैन |
| | क्या भारतीय नागरिक है | : | हां |
| | पता | : | जैन विश्व भारती, लाडनूं, |
| 6. | उन व्यक्तियों के नाम व पते, जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पत्र के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों | : | जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1 |

मैं, बिनोदकुमार चोरड़िया एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

**बिनोदकुमार चोरड़िया**
प्रकाशक के हस्ताक्षर





बिनोदकुमार चोरड़िया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता–1 के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

*With best compliments from :*

# SMT MACHINES

## INFRASTRUCTURE

- In-House third party inspection facility.
- SMT has three manufacturing units.
- SMT has more than 150 Heavy and Precise machine out of which about 60 machines are imported from Europe, efforts to deliver the best and on time.
- All the designing is done on 3D Autodesk Inventor software's by our experienced engineers
- SMT has taken initiative to provide Operating and Instruction Manual with most of the machines integrated by Oracles ERP Software, dedicating ourselves to professionalism committed for the Best of the After Sale Services and lot more.

## Turnkey Project Experts in Total Steel Making

Apart from regular products, we provides-Certified TMT Quenching Box, Automatic and Skid Type transfer cooling Beds, Twin Channels, Eden Borne Type Coiler, Flying & Dividing Shears, Cobble Shears, Section Straightening Machine, Repeaters Roller Conyeyors, Tilting & Y Table, Snap Shears etc.

SMT

**SMT MACHINES ( INDIA) LIMITED**

An ISO 9001:2000 Co., An ISO 14001 : 2004 Co., An ISO 18001: 2007 Co.
D & B Ranked SE 2A Unit, Govt of India Recognized Export House
G.T.Road Near Industrial Focal Point, Mandi Gobindgarh - 147301,
INDIA, Mob : + 91-93577 55555
Tel : + 91- 1765 256337, 257742, Fax : 255199
e- mail : info@smtmachinesindia.org, info@smtsteelmills.com
**Web : www.smtmachinesindia.org. www.smtsteelmills.com**

Fine Strokes ( 09866291098 )

जैन भारती, मार्च , 2013 ■ प्रेषण दिनांक 28 फरवरी, 2013
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

# के.बी.डी. फाउण्डेशन

## बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन

## बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन

## बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779
नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।